सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

संविधान का अनुच्छेद 12

और

पब्लिक सैक्टर उपक्रम

विषय पर

एक सौ पैंतालीसवीं रिपोर्ट

के० एन० सिंह,
(भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति)

अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110 001
फोन : कार्यालय 384475
निवास 3019465

अ० शा० सं० 6(ए)(1)/87-एल सी (एल एस)

25 नवम्बर, 1992

प्रिय प्रधान मंत्री जी,

"संविधान का अनुच्छेद 12 और पब्लिक सैक्टर उपक्रम" विषय पर भारत के विधि आयोग की 145वीं रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

2. 13वें विधि आयोग के गठन के पश्चात् यह दूसरी रिपोर्ट है। यह रिपोर्ट न्या० डी० ए० देसाई की अध्यक्षता में गठित 11वें विधि आयोग को विधि और न्याय मंत्री द्वारा, उनके अ० शा० पत्र सं० एफ 12(1)/87-आई० सी०, तारीख 30 मार्च, 1987 के संदर्भ में किए गए निर्देश (रेफरेंस) के अनुसरण में प्रस्तुत की जा रही है। पत्र की फोटो प्रति संलग्न है। उक्त पत्र में विधि आयोग से यह अनुरोध किया गया था कि वह इस प्रश्न पर जांच करे कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को संविधान के अनुच्छेद 12 के प्रवर्तन से अपवर्जित किया जाना चाहिए या नहीं।

3. विधि आयोग ने इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओं की, उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि के प्रकाश में तथा आयोग की 126वीं रिपोर्ट की पृष्ठ भूमि में, परीक्षा की है। 126वीं रिपोर्ट में आयोग ने सरकार और पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की मुकदमों से संबंधित नीति पर विचार किया था। इस रिपोर्ट में लोक उद्यम ब्यूरो द्वारा उठाए गए प्रश्नों पर भी विचार किया गया था जिसके अनुरोध पर ये विषय आयोग को निर्दिष्ट किए गए थे।

सादर,

भवदीय,

ह०

(के० एन० सिंह)

माननीय श्री पी० वी० नरसिम्हा राव,
प्रधान मंत्री तथा विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली।

राज्य मंत्री
विधि और न्याय
भारत सरकार
नई दिल्ली-110001
30 मार्च, 1987

अ० शा० सं० एफ(12)(1)/87-आई०सी०

प्रिय श्री देसाई जी,

आपको ज्ञात होगा कि उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 12 का निर्वचन करते हुए हाल ही में यह निर्णय दिया है कि सरकार का कोई भी अभिकरण या तंत्र उस अनुच्छेद में आने वाले "अन्य प्राधिकरण" शब्दों के अंतर्गत आएगा। उच्चतम न्यायालय का **सबसे अंतिम निणय सैन्ट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन लिमिटेड बनाम ब्रजोनाथ** है जिसे ए० आई० आर० 1986 उ० न्या० 1571 पर रिपोर्ट किया गया है।

2. इस विषय पर 19-1-1987 को सचिवों की समिति में विचार किया गया था और यह निश्चित हुआ था कि यह विषय औपचारिक रूप से तुरंत ही विधि आयोग को निर्दिष्ट किया जाए और लोक उद्यम ब्यूरो इस प्रयोजन के लिए एक आवश्यक निर्देश (रेफरेंस) तैयार करे जिसमें सभी विचार योग्य प्रश्नों को रखा जाए और उसे विधि आयोग को निर्दिष्ट करने के लिए विधि और न्याय मंत्रालय को भेज दे। विधि आयोग से यह अनुरोध किया जाएगा कि वह इसे अत्यावश्यक मान कर कार्रवाई करे और अपनी सिफारिशें यथाशीघ्र प्रस्तुत करे।

3. तदनुसार, लोक उद्यम ब्यूरो ने हमारे पास विधि आयोग को निर्देश करने के लिए सामग्री भेजी है जो संलग्न है।

4. मैं आभारी रहूंगा यदि विधि आयोग लोक उद्यम ब्यूरो द्वारा उठाए गए प्रश्नों की परीक्षा करके इस विषय पर अपनी सिफारिशें यथाशीघ्र हमें भेजने की कृपा करेगा।

सादर,

भवदीय,

ह०

(एच० आर० भारद्वाज)

न्या० श्री डी० ए० देसाई,
अध्यक्ष, विधि आयोग,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली।

संलग्नक : यथोक्त

विषय सूची

		पृष्ठ
अध्याय 1	भूमिका	1
अध्याय 2	वर्तमान स्थिति	3
अध्याय 3	पब्लिक सैक्टर के उद्देश्य और सांख्यकोय चित्र	8
अध्याय 4	कतिपय मामूली स्पष्टीकरण	11
अध्याय 5	संशोधन के पक्ष और विपक्ष में तर्क और निष्कर्ष।	16

अध्याय 1

भूमिका

1.1. रिपोर्ट की मुख्य वस्तु

इस रिपोर्ट में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि क्या पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को संविधान के अनुच्छेद 12 की परिधि में से हटा दिया जाना चाहिए। अनुच्छेद 12 में "राज्य" पद की परिभाषा दी गई है जिसके अंतर्गत, संविधान के भाग 3 (मूल अधिकार) के प्रयोजनों के लिए, भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी आते हैं। भारत सरकार ने, लोक उद्यम ब्यूरो के आग्रह पर, एक औपचारिक निर्देश (रैफरैंस) करके[1] भारत के विधि आयोग से यह अनुरोध किया है कि इस प्रश्न पर विचार करे।

1.2. उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय

भारत के उच्चतम न्यायालय ने अनेक विनिश्चयों में यह निर्णय दिया है कि लोक निगम और उपक्रम "राज्य" की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं। अतः ये निगम और उपक्रम संविधान के भाग 3 के अधीन हैं। इसके परिणामस्वरूप, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने न केवल सेवा विषयक मामलों में ही बल्कि वाणिज्यिक संव्यवहारों से संबंधित विषयों में भी लोक निगमों और उपक्रमों के आदेशों में हस्तक्षेप किया है। न्यायालयों के हस्तक्षेप के कारण लोक उद्यम ब्यूरो को चिंता पैदा हो गई है क्योंकि उसकी राय में, इसके कारण पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को वाणिज्यिक और औद्योगिक सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने में गंभीर कठिनाईयां उत्पन्न हो गई हैं। ब्यूरो ने अनुच्छेद 12 में इस रीति से संशोधन करने का प्रस्ताव रखा है जिससे कि लोक निगमों और उपक्रमों को "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति से बाहर रखा जा सके और न्यायिक पुनर्विलोकन से तथा इन उपक्रमों के कार्यकरण में न्यायालयों के हस्तक्षेप से बचाव हो सके।

1.3. लोक उद्यम ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत बातें

लोक उद्यम ब्यूरो ने लोक उद्यमों द्वारा अनुभव की गई निम्नलिखित कतिपय कठिनाइयों और समस्याओं को उजागर किया है जिनका परिणाम यह निर्देश है :—

सर्वप्रथम, जहां तक सेवा विषयक मामलों की बात है, यह अनुभव हुआ है कि संविधान के अनुच्छेद 14 के उपबंधों के पब्लिक सैक्टर निगमों पर प्रवृत्त होने के कारण, इन निगमों के कर्मचारियों को व्यावहारिक रूप से एक स्थायी नियोजन की हैसियत प्राप्त हो गई है और उनकी सेवाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता यद्यपि नियमों में तीन मास का नोटिस दे कर सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं।

दूसरे, संविदाएं देने के क्षेत्र में, यह बात ध्यान में आई है कि जहां किसी पब्लिक सैक्टर निगम के प्रबंध कार्य को किसी फर्म के खराब पूर्ववृत्त की जानकारी हो वहां भी वह उस फर्म के साथ कारोबार को रोक नहीं सकता या उस फर्म से कारोबार करने से तब तक इंकार नहीं कर सकता जब तक कि निगम इस विषय पर न्यायालय के निर्णयों में इंगित औपचारिकताएं पूरी नहीं कर लेता। इसके अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति, जिसका पब्लिक सैक्टर के साथ कारोबार है, निगम से अपेक्षित माल प्राप्त नहीं कर पाता तो वह रिट याचिका फाइल कर देता है और प्रायः माल देने के लिए पब्लिक सैक्टर निगम के विरुद्ध एक-पक्षीय व्यादेश (इंजक्शन) के लिए आवेदन भी कर देता है।

तीसरे, ऐसे उदाहरण सामने आए हैं जिनमें न्यायालयों ने नियमित निकायों की जनरल बॉडी का साधारण अधिवेशन न बुलाए जाने के बारे में भी अंतरिम आदेश मंजूर किए हैं।

अंतिम रूप से, दस्तावेजों के संदर्भ में प्रक्रिया के निदान में यह बात आ गई है कि यदि न्यायालय में साक्ष्य में किसी अन्य पब्लिक सैक्टर अभिकरण द्वारा जारी किया गया कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है तो उस पर प्रश्नचिह्न लगाना संभव नहीं होता, भले ही वह दस्तावेज अपूर्ण या त्रुटिपूर्ण ही क्यों न हो, क्योंकि अन्य पक्षकार यह तर्क देता है कि वह दस्तावेज भी सरकार के ही एक अन्य अभिकरण ने जारी किया है और "अभिकरण" के सिद्धांत के आधार पर उसे सभी अभिकरणों को स्वीकार करना पड़ेगा।

---

1. श्री इं० रा० भारद्वाज, राज्य मंत्री, विधि और न्याय, भारत सरकार का पत्र एफ सं० अ० शा० एफ० 12(1)/87—आई०सी० तारीख 30-3-1987।

1.4. पूर्वतर रिपोर्ट

यह उल्लेख किया जा सकता है कि 1988 में भारत के विधि आयोग ने सरकार को एक रिपोर्ट भेजी थी जो (i) सरकार, और (ii) पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से संबंधित मुकदमा नीति और युक्तियों की बाबत थी[1]। उस रिपोर्ट में, आयोग ने उन मुकदमों में अत्यधिक वृद्धि के कारणों की जांच की थी जिनका संबंध पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से था और एक प्रभावपूर्ण मुकद्दमा नीति तैयार करने की आवश्यकता पर बल दिया था। रिपोर्ट में, अन्य बातों के साथ-साथ, पब्लिक सैक्टर के नियोजकों और कर्मचारियों के बीच विवादों के निपटारे के लिए एक प्रभावशील शिकायत कक्ष स्थापित करने की सिफारिश की गई थी। उसमें यह सिफारिश भी की गई थी कि वाणिज्यिक और कारोबार संबंधी विवादों को माध्यस्थम् के माध्यम से निपटाया जाना चाहिए । वर्तमान रिपोर्ट का संबंध एक अलग विषय से है, अर्थात्, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की संवैधानिक स्थिति के तात्विक प्रश्न से है। वर्तमान रिपोर्ट प्रक्रिया विषयक पहलुओं तक सीमित नहीं है, इसमें इस बुनियादी प्रश्न पर विचार किया गया है कि संविधान के भाग 3 के आधार पर किसी व्यक्ति को उपलब्ध अधिकार और उपचार क्या पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध भी उपलब्ध रहने चाहिए या नहीं, तथा, यह प्रश्न भी कि, संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन से पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को बाहर रखने के लिए अनुच्छेद 12 का संशोधन करना वांछनीय तथा संवैधानिक रूप से अनुज्ञेय है अथवा नहीं। इस प्रकार, इस रिपोर्ट का क्षेत्र पूर्वतर 126वीं रिपोर्ट से भिन्न है। तथापि, वर्तमान रिपोर्ट में विचारणीय प्रश्न पर विचार के लिए भी उस रिपोर्ट में जांच किए गए कुछ आंकड़े सुसंगत और उपयोगी हैं; और उचित प्रक्रम पर उनका उल्लेख किया जाएगा।

1.5. रिपोर्ट की तैयारी से संबंधित कदम

विधि आयोग ने सरकार से यह निर्देश प्राप्त होने पर लोक उद्यम ब्यूरो के माध्यम से उन मुकदमों की प्रकृति और मात्रा की बाबत, जो पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से संबंधित हैं, आंकड़े उपलब्ध करने के लिए कदम उठाए जिससे कि यह पता लगे कि क्या ऐसे मुकदमें ऐसे उपक्रमों के "राज्य" की परिभाषा के अंतर्गत आने के कारण हुए हैं और न्यायिक निर्णयों का परिणाम हैं। आयोग ने सुसंगत न्यायिक निर्णयों का अध्ययन भी आरंभ किया। इस रिपोर्ट के आगामी अध्यायों में, अन्य बातों के साथ ही, उन महत्वपूर्ण बातों को भी शामिल किया गया है जो आयोग द्वारा प्राप्त किए गए आंकड़ों[2] और उपरोक्त न्यायिक निर्णयों[3] का परिणाम हैं।

1. भारत का विधि आयोग सरकार और पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की मुकदमा नीति और युक्तियां (126वीं रिपोर्ट)।
2. भाग–पैरा 3.4।
3. आगे—अध्याय 2।

अध्याय 2

वर्तमान स्थिति

2.1. संवैधानिक उपबंध

इस रिपोर्ट में जिस समस्या पर विचार किया जाने वाला है वह संविधान के अनुच्छेद 12 के कारण (जो संविधान के भाग 3 में आता है) उत्पन्न हुई है। अनुच्छेद 12 निम्नलिखित प्रकार से है :—

> "12. इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद् तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान-मंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं।"

इस ओर ध्यान आकर्षित है कि अनुच्छेद 12 में, स्पष्ट शब्दों में, यह उपबंध नहीं है कि पब्लिक सैक्टर के उपक्रम "राज्य" की परिभाषा में आते हैं; किंतु वास्तविक स्थिति यही है और यह इस विषय पर न्यायिक निर्णयों का परिणाम है। इस प्रक्रम पर यदि संक्षेप में कहा जाए तो ऐसे उपक्रम भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन "सभी प्राधिकारी" शब्दों के अंतर्गत आते हैं।

2.2. प्रारम्भ

सामान्यतया, अनुच्छेद 12 का यह विस्तारित निर्वचन उस निर्णय से प्रारंभ हुआ था जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड "राज्य" की परिभाषा के अंतर्गत आता है।[1] इस निष्कर्ष तक पहुंचने में उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य पर बल दिया था कि ऐसे प्राधिकरण संवैधानिक या कानूनी प्राधिकरण हैं और वे विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि राज्य विद्युत बोर्डों का गठन विद्युत (आपूर्ति) अधिनियम, 1948 के अधीन किया जाता है। न्यायालय को इस निष्कर्ष तक पहुंचने का मुख्य आधार (अन्य कारणों के अतिरिक्त) "प्राधिकारी" की तत्ववस्तु रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। इसी तर्क की पुनरावृत्ति 1975 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय[2] में भी हुई।

2.3. राज्य का अभिकरण या परिकरण

राज्य और प्रश्नगत उपक्रम के बीच की कड़ी का विश्लेषण करने के लिए कोई फार्मूला निकालना आवश्यक था; और उच्चतम न्यायालय ने अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण के सुविख्यात निर्णय[3] में यही प्रधान मार्ग अपनाया। इस प्राधिकरण का गठन अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण अधिनियम, 1971 के अधीन किया गया है। प्राधिकरण के निदेशक ने एक सूचना निकाल कर बम्बई स्थित अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन पर एक द्वितीय श्रेणी का रैस्ट्रां और दो स्नेकबार बनाने और चलाने के लिए निविदाएं आमंत्रित की थीं। सूचना के उत्तर में निविदाएं प्राप्त हुईं। श्री आर० डी० शैट्टी, अपीलार्थी ने, जो कि निविदाकर्ता नहीं था, एक रिट अर्जी फाइल की जिसे मुम्बई उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। उसने उच्चतम न्यायालय में अपील की विशेष इजाजत के लिए आवेदन किया और इजाजत प्राप्त कर ली। उसने अनुरोध किया कि विमान पत्तन प्राधिकरण ने निविदाएं आमंत्रित करने के लिए जो सूचना निकाली थी उसमें पात्रता की शर्तें थीं किंतु तत्पश्चात् उसे बिना किसी उचित कारण के बदल दिया गया और उसके परिणामस्वरूप वह निविदा नहीं कर सका। उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह भी कहा गया कि अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण, जो कि संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थानुसार "राज्य" है, उसके द्वारा नियत की गई पात्रता की शर्तों को प्रभावी करने के लिए बाध्य था और उसे बिना किसी औचित्य के उसकी अर्जी से उसमें परिवर्तन करने का कोई हक नहीं था। विमान पत्तन प्राधिकरण ने विरोध में कहा कि अपीलार्थी ने कोई निविदा प्रस्तुत नहीं की थी अतः अर्जी लाने का और सुनवाई किए जाने का कोई अधिकार उसे नहीं था और प्रत्यर्थियों में से एक को अनुज्ञप्ति दिए जाने के कारण उसे कोई क्षति भी नहीं हुई है। यह तर्क भी दिया गया कि पात्रता की शर्तें में कोई कानूनी बल नहीं था। अतः यदि पात्रता के मानक को नहीं अपनाया गया तो यह बात न्यायालय के विचार योग्य नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने इस आधार पर अपील खारिज कर दी कि अपीलार्थी ने कोई निविदा प्रस्तुत नहीं की थी और उसे कोई क्षति नहीं हुई थी। फिर भी, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि "जहां सरकार सर्वसाधारण के साथ व्यवहाररत हो वहां सरकार, अपनी मर्जी से मनमानीपूर्वक कार्य नहीं कर सकती

1. राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड, जयपुर बनाम मोहन लाल, ए० आई० आर०, 1987, उ० न्या० 1857।
2. सुखदेव सिंह बनाम भगत राम, ए० आई० आर०, 1975, उ० न्या० 1331।
3. आर० डी० शैट्टी बनाम भारत का अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन, ए० आई० आर०, उ० न्या०, 1979, 1626।

चाहे वह नौकरियां देने का मामला हो या अन्य प्रकार के कोई लाभाधिकार प्रदान करने का मामला हो, और, किसी प्राइवेट व्यक्ति की तरह, मनचाहे व्यक्ति के साथ संव्यवहार नहीं कर सकती, अपितु उसके उस मानक या मापदंड के अनुरूप होने चाहिए जो मनमानीपूर्ण, अनुचित या असंगत न हों। लाभाधिकार मंजूर करने के विषय में सरकार की शक्ति या विवेकाधिकार, जिसमें नौकरियां, ठेके, कोटा, अनुज्ञप्ति, आदि देना भी है, युक्तियुक्त, सुसंगत और भेदभाव रहित मानक या मापदंड के अनुसार सीमित और आधारित होना चाहिए और यदि सरकार किसी मामले में ऐसे मानक या मापदंड से विचलन करती है तो उसकी कार्रवाई अवैध घोषित किए जाने योग्य होगी सिवाय तब जब यह दर्शाया जा सके कि सरकार द्वारा किया गया ऐसा विचलन मनमानीपूर्ण नहीं था बल्कि किसी ऐसे विधिपूर्ण सिद्धांत पर आधारित था जो अपने आप में अयुक्तियुक्त, अनुचित या मनमानीपूर्ण नहीं था।" उच्चतम न्यायालय ने उक्त टिप्पणियां करने के पश्चात् यह भी निर्णय दिया कि कानून द्वारा स्थापित या किसी विधि के अधीन निगमित निगम सरकार के अभिकरण या परिकरण माने जाएंगे यदि वे कतिपय निम्नलिखित कसौटियों पर खरे उतरते हैं, अर्थात्, :—

(i) शेयर पूंजी का स्रोत ;

(ii) निगम पर सरकार के नियन्त्रण का विस्तार, और क्या नियन्त्रण "गहरा और विस्तृत" है ;

(iii) क्या निगम का स्वरूप एकाधिकारपूर्ण है ;

(iv) क्या निगम के कृत्य सार्वजनिक महत्व के हैं और शासकीय कृत्यों से गहन रूप से जुड़े हैं ; और

(v) क्या निगम को कोई ऐसी चीज अन्तरित की गई है जो पहले सरकार की थी।

उपरोक्त कसौटियों का उल्लेख करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि उक्त सूची परिपूर्ण नहीं है और अपनी प्रकृति के कारण वह परिपूर्ण हो भी नहीं सकती क्योंकि नए कार्यों को हाथ में लेने में हो रही वृद्धि, प्रबन्ध और प्रशासन की बढ़ती हुई उलझनों और निगमों तथा सरकार के बीच सम्बन्धों में समायोजन बनाए रखने की आवश्यकता के कारण, जिनमें लचीलेपन, अनुकूलन और नवसृजन की आवश्यकता है, यह सम्भव नहीं है कि उन कसौटियों को सम्पूर्ण रूप से गिनाया जा सके जो नितान्त रूप से और सभी मामलों में इस प्रश्न का अचूक उत्तर प्रदान कर सकें कि कोई निगम सरकार का अभिकरण या परिकरण है या नहीं। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि कोई एक आधार ही इस प्रश्न का समाधानप्रद उत्तर प्रदान नहीं कर सकता और न्यायालय को इन आधारों के समग्र प्रभाव पर विचार करना होगा कि और तब ही वे प्रत्येक मामले के तथ्यों और और परिस्थितियों के आधार पर किसी विनिश्चय पर पहुंच सकता है। न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि क्योंकि निगम सरकार के अभिकरण या परिकरण हैं अत. वह उसी प्रकार से संवैधानिक या लोक विधि की परिसीमाओं से बंधे हैं जिस प्रकार से सरकार बंधी है। संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन "विधि के समक्ष समानता" के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने यह घोषणा की कि कोई भी नियम, जिसमें सरकार की मनमानीपूर्ण कार्रवाई परिलक्षित होती है, उस दशा में समान रूप से लागू होना चाहिए जहां सरकार सर्वसाधारण के सम्बन्ध में कार्य कर रही हो, चाहे वह नौकरियां देने की बात हो या संविदाएं करने की अथवा अन्यथा, और वह मनमानीपूर्वक कार्य नहीं कर सकती और अपनी मर्जी के अनुसार अपने मनचाहे-व्यक्ति के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ सकती। उसकी कार्रवाई ऐसे सिद्धान्तों के अनुरूप होनी चाहिए जो औचित्य और सुसंगतता की कसौटी पर खरे उतरें।

2.4. सार्वजनिक स्वरूप

हमारे प्रयोजन के लिए, यह संकेत करना सुसंगत है कि किसी सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उपक्रम का सार्वजनिक स्वरूप उन आधारों में से एक है जिस पर न्यायालय ने बल दिया है। वास्तव में "अभिकरण या परिकरण" होने की कसौटी का सुझाव 1975 में न्यायाधिपति श्री मैथ्यू ने दिया था।[1] श्री मैथ्यू ने, अन्य आधारों के अतिरिक्त, निगम के कृत्यों के सार्वजनिक स्वरूप के आधार पर भी बल दिया था।

2.5. सरकारी कंपनियां

"अभिकरण या परिकरण" की वृहत कसौटी का जो (उपरोक्त के अनुसार) अधिकथित की गई है, एक परिणाम यह निकाला कि कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 617 में यथा परिभाषित सरकारी कम्पनियां थीं, संविधान के अनुच्छेद 12 के प्रयोजनों के लिए, "राज्य" की परिभाषा के अन्तर्गत सम्मिलित की जाने लगीं। इसी कारण यह निर्णय दिया गया कि भारत पैट्रोलियम निगम उसके परिक्षेत्र के अन्तर्गत आता है।[2] कुछ दिन पूर्व की भारतीय तेल निगम को भी अनुच्छेद 12 के परिक्षेत्र के अन्तर्गत निर्णीत किया गया है।[3] तद्नुसार, भारतीय तेल निगम द्वारा अर्जीदार ल्यूब्रीकेंट की आपूर्ति को अचानक, बिना

1. सुखदेव सिंह बनाम भगत राम, ए० आई० आर० 1975, उ० न्या० 1331।
2. लोम प्रकाश रेखी बनाम भारत का संघ, ए० आई० आर० 1981, उ० न्या० 212 (1981) 1 उ० न्या० मा० 499।
3. महाबीर आटो स्टोर्स बनाम भारतीय तेल निगम (1990), 3 उ० न्या० मा० 752।

सूचना, रोक देने की कार्रवाई को मनमानीपूर्ण, नैसर्गिक न्याय और औचित्य के विरुद्ध तथा अयुक्तियुक्त बताकर संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होने का निर्णय दिया गया और यह व्यावहारिक रूप से अर्जीदार कम्पनी को ब्लैकलिस्ट करने के बराबर है। इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि सरकारी कम्पनियां प्रत्यक्ष रूप से किसी कानून द्वारा सृजित नहीं की जाती हैं अपितु (अन्य कम्पनियों के समान) कानून के अधीन निगमित होती हैं। फिर भी, "अभिकरण या परिकरण" की कसौटी इस सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सुसंगत हो गई है।

2.6. कानूनी और कानून-रहित स्वरूप

स्थिति मोटे तौर पर यह है कि, उपरोक्त निर्णय के पश्चात् यह निर्णय देना सम्भव हो गया कि वह "राज्य" के रूप में है भले ही उसका जन्म प्रत्यक्षतः किसी कानून से नहीं हुआ हो। निस्संदेह, यदि वह कानूनी उपक्रम है जिसे सरकार के सदृश्य कृत्य सौंपे गए हैं, तो वह "राज्य" के परिक्षेत्र में आएगा। किन्तु उसका जन्म प्रत्यक्षतः किसी कानून से हुआ हो यह बात तात्विक नहीं हो सकती यदि प्रश्नगत उपक्रम राज्य का अभिकरण या परिकरण है। इसका उदाहरण 1981 का सुविख्यात निर्णय है।[1] यह मामला जम्मू-कश्मीर सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक सोसाइटी से सम्बन्धित था जो भारत सरकार द्वारा आयोजित एक रीजनल इंजीनियरिंग कालेज श्रीनगर में चल रही थी। वे मुख्य आधार जिनके कारण उच्चतम न्यायालय ने उस सोसाइटी को "राज्य" के रूप में माना, निम्नलिखित थे :—

(i) सोसाइटी के गठन में अधिकांशतः सरकार के प्रतिनिधि हैं।

(ii) सोसाइटी का खर्च केन्द्रीय सरकार उपलब्ध कराती है।

(iii) सोसाइटी द्वारा बनाए गए नियमों के लिए सरकार का पूर्व अनुमोदन अपेक्षित है।

(iv) सोसाइटी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सरकार के निदेशों का अनुपालन करे।

(v) सरकार सोसाइटी के सदस्यों को नियुक्त कर सकती है और हटा सकती है।

(vi) इस प्रकार, समग्र नियन्त्रण सरकार के हाथ में है।

2.7. रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियां

यह उल्लेख करना दिलचस्प होगा कि कई अनेक न्यायिक विनिश्चयों में यह निर्णय दिया गया है कि ऐसी रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियां, जो व्यावहारिक रूप से सरकार के नियन्त्रण में हैं, "राज्य" की परिभाषा के अन्तर्गत आती हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

(i) भारतीय सांख्यिकी संस्थान[2] ;

(ii) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्[3] ;

(iii) बौध स्कूल[4] ;

(iv) बाल सहायता सोसाइटी[5];

2.8. गहन और व्यापक नियंत्रण तथा सोसाइटियां।

इसके विपरीत, जहां न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि, तथ्यों के आधार पर, सोसाइटी का सम्बन्ध सरकारी कारबार से नहीं था और वह सरकार के गहन और व्यापक नियंत्रण में नहीं थी वहां वह "राज्य" की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आएगी। इसका उदाहरण संवैधानिक और संसदीय अध्ययन संस्थान से सम्बन्धित निर्णय में मिलता है[6]।

1. अजय हासिया बनाम खालिद मुजीब, ए० आई० आर० 1981, उ० न्या० 487।
2. बी० एस० मिनहास बनाम भारतीय सांख्यिकीय संस्था (1983) 4 उ० न्या० मा०, 582।
3. पी० के० रामचंद्र अय्यर बनाम भारत का संघ (1984) 2 उ० न्या० मामल, 141।
4. अध्यक्ष, स्कूल आफ बुधिस्ट फिलोसफी बनाम माखन लाल मट्टू (1990) 4 उ० न्या० मा०, 6।
5. शीला बारसे बनाम सचिव, चिल्ड्रन एड सोसाइटी (1987) 3 उ० न्या० मा०, 50।
6. टके राज वसंदी बनाम भारत का संघ (1988)। 1 उ० न्या० मा०, 236।

2.9. बैंककारी संस्थाएं और सहकारी सोसाइटियां : नियंत्रण की कसौटी

"नियन्त्रण" की कसौटी का प्रयोग करने के आधार पर ही राष्ट्रीयकृत बैंक के बारे में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि वे "राज्य" के अन्तर्गत आते हैं।[1] इसके विपरीत, सहकारी बैंकों और अन्य सहकारी सोसाइटियों के बारे में अधिकांश उच्च न्यायालयों ने ये निर्णय दिए हैं कि वे "राज्य" के अन्तर्गत नहीं हैं।[2-3-4-5]

2.10. कसौटियां परिपूर्ण नहीं हैं

इस प्रक्रम पर यह संकेत दिया जा सकता है कि कोई भी उपरोक्त कसौटी, जिस पर उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों में विचार किया गया है, अपने आप में परिपूर्ण नहीं है और गिनाए गए आधार की सर्वव्याप्ति नहीं है।[6] सरकार का वित्तीय सहयोग, गहन और व्यापक नियन्त्रण, निगम द्वारा किए जा रहे कृत्य, निगम का एकाधिकारिक स्वरूप और अन्य सुसंगत आधार अन्तर डाल सकते हैं। कभी एक या अन्य आधार पर बल दिया जा सकता है; किन्तु अनिवार्य रूप से, समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा। यह तथ्य कि सरकार का शेयर अभिदार बहुत अधिक व्यापक नहीं है, अन्य आधारों के साथ मिलकर, सारपूर्ण सिद्ध हो सकता है जैसा कि निम्नलिखित मामलों में पाया गया था :—

(i) कोचीन रिफाइनरी लिमिटेड ;[7]

(ii) वैल्लूर को-आपरेटिव स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड ;[8]

(iii) मारुति उद्योग लिमिटेड का संयुक्त उद्यम।[9]

अनेक बार, न्यायालयों ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सरकार द्वारा मार्ग-निर्देश, परामर्श और सलाह की व्यवस्था आवश्यक रूप से राज्य का गठन और व्यापक नियन्त्रण नहीं माना जा सकता। इसके उदाहरण निम्नलिखित के मामलों से सम्बन्धित निर्णय हैं :—

(iv) राष्ट्रीय ललित कला केन्द्र ;[10]

(v) इंडियन इंस्टीट्यूट आफ बैंकर्स।[11]

2.11. कानून से भिन्न कृत्य

कोई ऐसा निकाय, जो कानूनी नहीं है और जो कोई कानूनी या सार्वजनिक कर्तव्य नहीं करता है, वह "राज्य" के अन्तर्गत नहीं आ सकेगा।[12] इसी प्रकार से, केवल यह तथ्य कि किसी निकाय विशेष का नाम कार्य आबंटन नियमों में आया है निश्चायक नहीं होगा जैसा कि वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् से सम्बन्धित एक मामले में निर्णीत हुआ है, जो कि एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है पर कानूनी निकाय नहीं है।[13]

2.12. विधिक स्थिति

उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से यह स्थिति स्पष्ट रूप से निश्चित हो गई है कि कोई सरकारी कम्पनी या राज्य का कोई अन्य परिकरण अथवा अभिकरण जिसका गठन किसी कानूनी उपबन्ध या कम्पनी अधिनियम या सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन हुआ है, संविधान के भाग 3 के प्रयोजनों के लिए, संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन "राज्य" की परिभाषा

1. हैदराबाद कमर्शियल्स **बनाम** इंडियन बैंक (1991) **2 स्कैल** 825।
2. चक्रधर **बनाम** सामा सिंधा सर्विस कापरेटिव सोसाइटी, ए० आई० आर० 1982, उड़ीसा 38।
3. प्रीतम सिंह **बनाम** पंजाब राज्य, ए० आई० आर० 1982, पंजाब और हरियाणा 228।
4. सतीश कुमार **बनाम** पंजाब राज्य सहकारी बैंक, ए० आई० आर० 1981, पंजाब और हरियाणा 382।
5. श्री कोनासीमा कापरेटिव सैंट्रल बैंक लि० **बनाम** एन० सीताराम राजू, ए० आई० आर० 1990, आंध्र प्रदेश 171।
6. चन्द्र भोहन **बनाम** एन० सी० ई० आर० टी० (1991), 3 उ० न्या० ज० 613।
7. के० एम० थामस **बनाम** कोचीन रिफाइनरी लि०, ए० आई० आर० 1982, केरल 248।
8. बड़ौदा काटन कंप० **बनाम** आंध्र प्रदेश स्टेट फेडरेशन आफ कापरेटिव स्पिनिंग मिल्स लि०, ए० आई० आर 1991, आंध्र प्रदेश 320।
9. पी० बी० थलोद **बनाम** मारुति उद्योग लि० सिविल रिट सं० 3182/90, देहली उच्च न्यायालय, 11-9-1991 को निर्णीत।
10. स्वपन के० दास **बनाम** सचिव, ललित कला अकादमी, ए० आई० आर० 1990, मामलों के टिप्पण 129 (कलकत्ता)।
11. राम प्रसाद **बनाम** इंडियन इंस्टीट्यूट आफ बैंकर्स, ए० आई० आर० 1992, पंजाब और हरियाणा (पूर्ण खंडपीठ)।
12. प्राग टूल्स कारपोरेशन **बनाम** सी० ए० इमानुयल (1969), 1 उ० न्या० मा०, 283।
13. सभाजीत तिवारी **बनाम** भारत का संघ, ए० आई० आर० 1975, उ० न्या० 1329।

के अन्तर्गत आएगा यदि ऐसा उपक्रम पूर्व वर्णित कसौटियों पर सही उतरता है। कभी-कभी राज्य के परिकरण के स्वरूप को अवधारित करने में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित आकारों को लागू करने पर भी कठिनाई होती है। कुछ उच्च न्यायालयों ने इस विषय में विभिन्न मत व्यक्त किए हैं। किन्तु यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि कोई एक विशेष आधार निश्चायक नहीं है तो उन निर्णयों को समझा जा सकता है जो यदा-कदा उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धान्तों से विचलन के लिए उद्धृत किए जाते हैं। यह बात याद रखनी होगी कि यदि कोई कम्पनी जो कानूनी कंपनी नहीं है और जो किसी कानूनी या सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर रही है तो वह "राज्य" की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आ सकती। इसी प्रकार से, केवल यह तथ्य कि किसी सोसाइटी विशेष का नाम कार्य आबंटन नियमों में आता है उस बात का निश्चायक नहीं होगा जैसा कि **वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्** के मामले में निर्णय किया गया है जो कि एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है पर कानूनी निकाय नहीं है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने जो मत व्यक्त किया था वह परवर्ती निर्णयों में उतना प्रभावी नहीं रह गया है; और, वर्तमान में, **अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण** के मामले में व्यक्त किया गया मत ही देश में प्रभावी है। उच्चतम न्यायालय ने **अजय हासिया के मामले** में यह निर्णय दिया है कि जम्मू-कश्मीर सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1898 के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी राज्य और केन्द्रीय सरकार का परिकरण अथवा अभिकरण थी; परिणामस्वरूप, वह अनुच्छेद 12 के अर्थ में एक प्राधिकारी थी।[1] **अंतरराष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण** के निर्णय में अधिकथित विधि की घोषणा ही आज भारत की विधि है। उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विपरीत किसी भी उच्च न्यायालय का कोई भिन्न मत गलत है।

---

1. अजय हासिया **बनाम** खलिद मुजीब सहरावर्दी (1981), 1 उ० न्या० मा० 322 : ए आई आर 1987, उ० न्या० 487।

अध्याय 3

पब्लिक सैक्टर के उद्देश्य और सांख्यकीय चित्र

3.1. अनुभवजन्य कठिनाइयां

हमें यह बताया गया है कि पब्लिक सैक्टर के कार्यों और लोपों के न्यायिक पुनरीक्षण का वृहत्त क्षेत्र, जो संविधान के अनुच्छेद 12 के निर्वचन का परिणाम है; पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के संविदा विषयों, सेवा की शर्तों; और अन्य विषयों में कार्यकरण पर रोक पैदा करता है।

3.2. वृहत्त उद्देश्य

हम, निर्देश सामग्री में वर्णित, समस्याओं की क्रमशः यह विचार करने के लिए चर्चा करेंगे कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के अनुच्छेद 12 के अर्थ में "प्राधिकारी" निर्णीत किए जाने के कारण इन उपक्रमों की दक्षता पर कोई प्रभाव पड़ा है या नहीं अथवा इन उपक्रमों को कारोबारी तरीके से कार्य करने में गंभीर कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं या नहीं। हमारे विचार में, ऐसा करने से पूर्व; यह आवश्यक है कि हम पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के वृहत उद्देश्यों की परीक्षा करें । पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के मुख्य उद्देश्यों को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि संविधान के भाग 4 में उल्लिखित राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को ध्यान में रखा जाए। अनुच्छेद 38 राज्य पर यह उत्तरदायित्व सौंपता है कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, खासकर प्रभावी रूप में स्थापन और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। यह भी निदेश दिया गया है कि राज्य आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा। इस अनुच्छेद और अन्य अनुच्छेदों में, जैसे, अनुच्छेद 39, 39क, 41, 42 और 46, इन मूल नीतियों का कथन है जिनका अनुसरण करने की अपेक्षा राज्य से कल्याणकारी राज्य सुनिश्चित करने की दृष्टि से कानून बनाते समय की जाएगी। यद्यपि निदेशक तत्व न्यायालय के विचार योग्य नहीं हैं और न्यायालय उन्हें प्रवृत नहीं कर सकते किन्तु फिर भी वे राज्य के विभिन्न अंगों पर बाध्य कर हैं। संघ सरकार ने, कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने के उद्देश्य से, समाज में परिवर्तन लाने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं तैयार की हैं। सरकार ने औद्योगिक विकास के क्षेत्र में वृद्धि और विकास के लिए कदम उठाए हैं जैसा कि 1948 और 1956 के औद्योगिक नीति के संकल्पों में बताया गया है ; 1956 के औद्योगिक नीति संकल्प में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि राष्ट्रीय उद्देश्य के रूप में समाज के समाजवादी ढांचे को अपनाने के लिए; और योजनाबद्ध तथा शीघ्र विकास के लिए भी, यह अपेक्षित था कि वे सभी सैक्टर, जो बुनियादी और संकटावस्था की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ; अथवा जो लोक उपयोगी सेवाओं की प्रकृति के हैं, पब्लिक सैक्टर में रखे जाने चाहिएं। इस औद्योगिक नीति को अग्रसर करने के लिए, अनेक पब्लिक सैक्टर उपक्रमों का गठन किया गया था। पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की स्थापना जिन कारणों से की गई उसका विधायी इतिहास विधि आयोग की 126वीं रिपोर्ट के अध्याय 1 में दिया गया है। पब्लिक सैक्टर उपक्रम सरकार के नियन्त्रण में और निदेश के अनुसार कृत्य करते हैं, और, इसी कारण उन्हें ऐसी रीति से कार्य करना होता है जिसकी आशा "राज्य" से की जाती है चाहे वह वाणिज्यिक क्षेत्र की हों। निस्संदेह, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों का प्रमुख प्रयोजन उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक वृद्धि करना और पर्याप्त आमदनी करना है जिससे राज्य को जनता को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करने में सहायता मिले । तथापि, प्राइवेट उपक्रमों से भिन्न रूप में, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से यह अपेक्षित नहीं है कि वे केवल लाभ के लिए कार्य करें। चूंकि कुछ उपक्रमों का सम्बन्ध लोक उपयोगी सेवाओं से है, उन्हें अपनी नीतियां इस प्रकार से तयार करनी और मोड़नी पड़ती हैं जिससे कि लोगों की सेवा हो भले ही कोई नफा न हो। उच्चतम न्यायालय ने तेल और प्राकृतिक गैस आयोग[1] उपक्रमों के मामले में कीमतें नियत करने का एक मात्र मापदंड लागत प्लस आधार हो यह धारणा इस सिद्धान्त से जन्म लेती है कि ऐसे उपक्रमों को या तो बिना किसी नफा नुकसान के आधार पर या न्यूनतम नफा के आधार पर कार्य करना चाहिए। यह सही रास्ता नहीं है। आवश्यक वस्तु ों और सेवाओं की दशा में जहां एक ओर प्राइवेट समुत्थानों को लगाई गई पूंजी पर कम से कम लाभ लेने की अनुमति दी जानी चाहिए वहां दूसरी ओर पब्लिक उपक्रमों या सेवाओं को नुकसान में भी चलना पड़ सकता है यदि ऐसा आवश्यक हो और भले ही न्यूनतम लाभ भी प्राप्त न हो। कम आवश्यक किन्तु फिर भी आधारित वस्तुओं की दशा में, उनसे

1. ओ० एन० जी० सी० बनाम दि एसोसिएशन आफ नेचुरल गैस कमिशन इंडस्ट्रीज आफ गुजरात, 1981 (1) स्केल 900, पृ० 31।

यह अपेक्षा की जा सकती है कि अपने लिए कम से कम लाभ का मार्जिन रखकर भी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। किन्तु, कार्य अनुकूल क्षेत्र मिलने पर, "वाणिज्यिक लाभ" पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को भी प्राप्त हो इसमें कोई मनाही या रोक नहीं है।"

3.3. दक्षता का पहलू

पब्लिक सैक्टर उपक्रम को चलाने की दक्षता का कोई सम्बन्ध संविधान के अनुच्छेद 226 या 32 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप से नहीं है। दूसरी ओर, दक्षता उपक्रम से सम्बन्धित अधिकारियों और कर्मकारों की दक्षता पर निर्भर करती है। दक्षता का सम्बन्ध उन सभी की योजना, कठोर परिश्रम, कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से है जो उपक्रम में काम कर रहे हों। न्यायालय का हस्तक्षेप तब आवश्यक होता है जब कानून का या संवैधानिक उपबन्धों का उल्लंघन होता है। उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के आदेशों या कृत्यों में केवल तब हस्तक्षेप करेंगे जब संविधान के भाग 3 के अधीन मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है। ऐसे सीमित हस्तक्षेप से उपक्रमों की दक्षता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता और न पड़ना ही चाहिए। संविधान के अध्याय 3 में सम्मिलित मूल अधिकार सर्वोपरि हैं और देश का प्रत्येक प्राधिकारी संवैधानिक उपबन्धों के अनुसार कार्य करने के लिए और अपनी नीतियों और आदेशों को मूल अधिकारों से सुसंगत रूप में तैयार करने के लिए बाध्य है। यह कहना कोई उचित तर्क नहीं है कि मूल अधिकारों के उल्लंघन की दशा में न्यायिक हस्तक्षेप पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की अदक्षता का कारण बनता है या उनकी उन्नति और विकास में बाधक होता है। पब्लिक सैक्टर उपक्रम को राज्य के किसी अन्य तंत्र या प्राधिकारी के समान, देश के कानून और संविधान का आदर करना चाहिए।

3.4. सांख्यिकीय चित्र : वाणिज्यिक मामले

हमने ऊपर सारांश में उन घटनाओं का वर्णन किया है जो अनुच्छेद 12 के संदर्भ में पब्लिक सैक्टर उपक्रमों ने अनुभव किए हैं। हम कुछ उन आंकड़ों के बारे में बताएंगे जो कि हमने लोक उद्यम ब्यूरो के माध्यम से प्राप्त किए हैं।[1] हमें इस बात का उल्लेख कर देना चाहिए कि ये आंकड़े 21 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से सम्बन्धित हैं। 31 मार्च, 1991 को पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की कुल संख्या 244 थी। उपरोक्त 21 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध प्रश्नगत अवधि में (9 वर्ष) (मोटे तौर पर 1981 से 1989 तक) 268 रिट अर्जियां फाइल की गई थीं। इन 268 रिट अर्जियों में से 183 वाणिज्यिक संव्यवहारों से सम्बन्धित थीं।

नमूने के तौर पर सम्मिलित किए गए पब्लिक सैक्टर उपक्रमों में से एक-तिहाई के विरुद्ध कोई मुकद्दमा नहीं था। 3 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध एक एक मुकद्दमा था। 7 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध 10 से कम, 2 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध, अर्थात्, खान और खनिज व्यापार निगम तथा भारतीय खाद्य निगम के विरुद्ध क्रमशः 81 और 45 मुकद्दमे थे जो वाणिज्यिक संव्यवहारों से सम्बन्धित थे।

3.5. सेवा संबंधी विषयों के बारे में आंकड़े

जहां तक सेवा विषयों से सम्बन्धित रिट अर्जियों का प्रश्न है, (नमूने के तौर पर 85) लोक उद्यम ब्यूरो द्वारा दिए गए आंकड़े भर्ती, प्रोन्नति, पदच्युति, वरिष्ठता आदि से सम्बन्धित हैं। सेवा विषयक मामलों के ब्यौरे ये हैं: (i) भर्ती के 11 मामले (ii), पदच्युति के 27 मामले और (iii) वरिष्ठता और प्रोन्नति के 52 मामले[2] तथापि, 16 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध भर्ती से सम्बन्धित कोई मामला लंबित नहीं था, 13 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध पदच्युति से सम्बन्धित कोई मामला नहीं था और 12 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध वरिष्ठता/प्रोन्नति आदि की श्रेणी का कोई मामला नहीं था। इस प्रकार, औसतन, 21 में से 14 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध सेवा विषयक कोई मामला नहीं था। केवल 7 पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध 85 रिट अर्जियां थीं जो कि कुल मुकद्दमेबाजी की लगभग 30 प्रतिशत है।

3.6. समग्र चित्र

यदि समग्र चित्र पर विचार करें तो कुल मिलाकर, 3 पब्लिक सैक्टर उपक्रम, अर्थात् नेवेली लिगनाइट निगम, खान और खनिज व्यापार निगम और भारतीय खाद्य निगम पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध कुल मुकद्दमेबाजी के लगभग दो-तिहाई से सम्बन्धित हैं। प्रतिशत की दृष्टि से, लगभग 7 प्रतिशत पब्लिक सैक्टर उपक्रम, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध मुकद्दमेबाजी के 65 प्रतिशत से अधिक के लिए उत्तरदायी हैं जैसा नमूना सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है।

1. निदेशक, लोक उद्यम ब्यूरो का पत्र सं० दिनांक 5 फरवरी, 1991।
2. निदेशक, लोक उद्यम ब्यूरो का पत्र दिनांक 5 फरवरी, 1991।

3.7. 126वीं रिपोर्ट में दिए गए आंकड़े

इस प्रक्रम पर हम विधि आयोग की उस रिपोर्ट के प्रति निर्देश करना चाहेंगे जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।[1] (126वीं रिपोर्ट), जहां पब्लिक सैक्टर उपक्रमों द्वारा या उनके विरुद्ध फाइल किए गए मुकद्दमों की मात्रा को एक सारणीबद्ध रूप में दिया गया है और उसके साथ 5 वर्षों, अर्थात्,1981, 1982, 1983–85/1986/1987 के दौरान किया गया व्यय भी है। आयोग ने यह संकेत किया था[2] कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों में से राष्ट्रीयकृत बैंक और वित्तीय संस्थाएं अधिकांश मुकद्दमेबाजी के लिए उत्तरदायी थीं। आयोग[3] ने विवादों को सुलझाने में प्रबन्ध के कार्यपालक अधिकारियों की ओर से उत्तरदायित्व में कमी के कारण पर बल दिया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में[4] पब्लिक सैक्टर में मुकद्दमेबाजी में वृद्धि के निम्नलिखित मुख्य कारण बताए हैं :—

(i) उत्तरदायित्व की कमी ;

(ii) भ्रष्टाचार ;

(iii) सेवा विषयों में अधिकारियों का अविवेकपूर्ण रुख ।

उसी रिपोर्ट में[5], मुकद्दमेबाजी के अनेक विनिर्दिष्ट उदाहरणों का उल्लेख किया गया है और उन पर विस्तार में टिप्पणियां की गई हैं कि किस प्रकार वादों या कार्यवाहियों से, सम्बन्धित पब्लिक सैक्टर उपक्रमों द्वारा बचा जा सकता था।

3.8. पब्लिक उपक्रम समिति : 9वीं रिपोर्ट (10वीं लोक सभा)

लोक उपक्रम समिति की हाल ही की रिपोर्ट[6] को उद्धृत करना भी आवश्यक है जो कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों में लंबित मुकदमेबाजियों के निपटारे से सम्बन्धित है ।

रिपोर्ट में (पैरा 1.9) सुसंगता के आंकड़े दिए गए हैं और इसके अतिरिक्त (पैरा 1.10 से पैरा 1.32) लगभग 11 मुकद्दमों के ध्यान देने योग्य मामलों की जांच की गई है। यदि समिति ने यह स्पष्ट कर दिया था (रिपोर्ट का पैरा 2.2) कि इस विषय में विस्तृत जांच चल रही थी किन्तु रिपोर्ट का रुख, जोकि नमूना सर्वेक्षण और चुनी गई जांच पर आधारित है स्पष्ट रूप से इस दिशा में है कि मुकद्दमेबाजी के उस व्यय को कम करने की आवश्यकता है जो कि अनुत्पादक है। हम रिपोर्ट का पैरा 2–3 अवश्य उद्धृत करना चाहगें जो निम्नलिखित प्रकार से है :

> "2.3. पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से प्राप्त जानकारी के नमूना सर्वेक्षण से समिति को यह देखकर अत्यन्त चिन्ता हुई है कि बहुत बड़ी संख्या में मुकद्दमे निपटारे के लिए लंबित हैं और उसके कारण फीस आदि पर व्यय हो रहा है और, इस बात के होते हुए भी, कि सरकार ने इसके विपरीत, समय-समय पर, निदेश दिए हैं, लोक समय की बरबादी हो रही है। समिति को एक और जिस बात ने खिन्न किया है वह तुच्छ या नगण्य मामलों या संव्यवहारों से सम्बन्धित लंबित मुकद्दमों की संख्या है जिनमें से कुछ तो 15 वर्ष से अधिक से लटके पड़े हैं। इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि ऐसे अनेक मामलों में मुकद्दमेबाजी पर व्यय किया गया धन दाव पर लगी रकम से बहुत अधिक है और इसके अतिरिक्त मूल्यवान समय की बरबादी तथा सम्बन्धित पक्षकारों और न्यायालय की शक्ति का व्यय भी है।"

ये रिपोर्टें स्पष्ट रूप से इस ओर इंगित करती हैं कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों ने तुच्छ विवादों को निपटाने में भी उचित कार्रवाई नहीं की है। इसके बजाए वे तुच्छ विषयों से सम्बन्धित मुकद्दमों में उलझ रहे हैं। तब किस प्रकार से न्यायालयों को पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के चलने में अदक्षता के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की ओर से दिए गए तर्क में कोई बल नहीं है।

---

1. भारत का विधि आयोग, 126वीं रिपोर्ट (सरकार और पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से संबंधित मुकदम्मेबाजी की नीति तथा उपचार), उपाबंध 5 पृष्ठ 63–72।
2. 126वीं रिपोर्ट, पृष्ठ 38-39 पैरा 7.3।
3. 126वीं रिपोर्ट, पृष्ठ 17, पैरा 2.26।
4. 126वीं रिपोर्ट, पृष्ठ 38, पैरा 7.11।
5. 126वीं रिपोर्ट, अध्याय 4।
6. पब्लिक उपक्रम समिति (दसवीं लोक सभा, 9वीं रिपोर्ट) (20 अगस्त, 1992), लोक उपक्रमों में निपटारे के लिए लंबित मुकदमें।

अध्याय 4

कुछ मामूली स्पष्टीकरण

4.1. अध्याय की परिधि

संविधान के अनुच्छेद 12 में प्रस्तावित संशोधन किया जाना चाहिए या नहीं इस बड़े प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह वांछनीय है और सुविधाजनक होगा कि कुछ विषयों को स्पष्ट कर दिया जाए, क्योंकि, हमारे विचार में, अनुच्छेद 12 के निर्वचन के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का इन बातों पर कोई तात्विक प्रभाव नहीं है। हम इनकी एक-एक कर के चर्चा करेंगे ।

4.2. संविधान का अनुच्छेद 311

प्रारंभ में, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के कर्मचारियों को संविधान के अनुच्छेद 311 के अधीन लाभ प्राप्त नहीं है। मोटे-तौर पर, उक्त अनुच्छेद सिविल सेवकों को पदच्युत् किए जाने, पद से हटाए जाने या पंक्ति में अवनत किए जाने के विरुद्ध कुछ रक्षोपायों का उपबंध करता है और ये बातें इस अनुच्छेद के उपबंधों का अनुपालन किए बिना नहीं की जा सकतीं। दो मुख्य रक्षोपाय हैं, (i) प्रथम यह कि संघ या राज्य में सिविल पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत् नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा; और (ii) दूसरा यह कि उसे ऐसी जांच के पश्चात् ही, जिसमें उसे उसके विरुद्ध आरोपों की सूचना दे दी गई हो और उन आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया हो, पदच्युत किया जाएगा या पद से हटाया जाएगा या पंक्ति में अवनत किया जाएगा, अन्यथा नहीं। यह अनुच्छेद ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होता जो "संघ या राज्य के अधीन सिविल पद" धारण नहीं करता हो। क्योंकि पब्लिक सैक्टर उपक्रम, न्यायिक सिद्धांत के अनुसार, उस रूप में सरकार से भिन्न है, और क्योंकि उनके कर्मचारियों को भारत की समेकित निधि में से भुगतान नहीं किया जाता है, वे सिविल पद धारण नहीं करते। परिणाम यह है कि अनुच्छेद 311 उन्हें लागू नहीं होता[1]। इस विषय पर और अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। किंतु उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय से निम्नलिखित अंश को उद्धृत करना उपयोगी होगा[2]।

> "अपने निर्णय के पूर्वतर भाग में कतिपय मामलों का उल्लेख करते समय हमारा ध्यान इस न्यायालय द्वारा दी गई उस चेतावनी की ओर गया था कि यदि कोई संस्था अनुच्छेद 12 के अर्थ में "राज्य" हो तब भी उसके कर्मचारी अनुच्छेद 311 के अंतर्गत लाभ लेने के हकदार नहीं हो जाते क्योंकि वे सिविल पदों के धारक नहीं हैं। तथापि, वे संविधान के भाग 3 का लाभ लेने के हकदार होंगे।"

यह संकेत दिया गया है कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के कर्मचारी इस मामूली कारण से अनुच्छेद 311 की सुरक्षा का लाभ नहीं ले सकते क्योंकि ऐसे उपक्रमों का विधिक व्यक्तित्व है किंतु वे सरकार से भिन्न हैं[3]। कोई कानूनी उपक्रम भी अनुच्छेद 311 के प्रयोजनों के लिए "राज्य" नहीं माना जा सकता है[4] ।

4.3. दस्तावेजों की समस्या

एक बात यह उठाई गई है कि[5] यदि किसी प्राइवेट व्यक्ति और अभिकर्ता 'क' के बीच कोई मुकद्दमा है और, उस मुकद्दमें में, कोई प्राइवेट पक्षकार साक्ष्य में अभिकर्ता 'ख' द्वारा जारी किया गया कोई दस्तावेज प्रस्तुत करता है तो कठिनाई पैदा हो जाती है क्योंकि (जैसा कि कहा गया है) एक परिकरण द्वारा जारी किए गए दस्तावेज को पब्लिक सैक्टर के सभी अभिकरणों द्वारा स्वीकार

---

1. (क) सुखदेव सिंह बनाम भगत राम, ए आई आर 1973 उ० न्या० 1331;
   (ख) सौप्रकाश रेखी बनाम भारत का संघ (1981) 1 उ० न्या० मा०, 449, 463 पैरा 29 ;
   (ग) हासिया बनाम खालिद मुजीब, (1981) 1 उ० न्या० मा० 722, पैरा 12;
   (घ) ए० आर० कालड़ा बनाम पी० एंड ई कारपोरेशन आफ इंडिया, ए आई आर 1984 उ० न्या० 1361, पैरा 20।
2. तैखराज बनाम भारत का संघ ए आई आर 1988 उ० न्या० 469 पैरा 21।
3. गुरु गोबिन्द बनाम शंकरी प्रसाद, ए आ ई आर 1964 उ० न्या० 254, 258; मफतलाल बनाम प्रमंडलीय नियंत्रक, ए आई आर 1966 उ० न्या० 1364।
4. बिहार राज्य बनाम भारत का संघ (1970) 1 उ० न्या० मा० 67, 75।
5. कृपया आगे परा 1.3, अंतिम उप-पैरा देखें।

करना होगा। हमें भय है कि साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के आधार पर कि ऐसा तर्क किसी न्यायालय में सफलतापूर्वक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। संभवतः, यह तर्क भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के उपबंधों के आधार पर, जो कि "लोक दस्तावेजों" से संबंधित है, मुकद्दमा करने वालों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है या प्रस्तुत किया जा सकता है। किंतु हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि उस अधिनियम में लोक दस्तावेजों का जो सुझाव है उसके आधार पर एक पब्लिक सैक्टर उपक्रम द्वारा जारी किया गया दस्तावेज अनिवार्य रूप से लोक दस्तावेज नहीं हो जाता। अधिनियम की स्कीम के अनुसार, किसी दस्तावेज का लोक दस्तावेज की श्रेणी में आने के लिए कतिपय कानूनी अपेक्षाओं को पूरा करना होता है। इस संबंध में हम उक्त अधिनियम की धारा 74 और 75 के उपबंधों का उल्लेख करना चाहेंगे :

"74. **लोक दस्तावेज**—निम्नलिखित दस्तावेजें लोक दस्तावेजें हैं :—

(1) वे दस्तावेजें जो—

(i) प्रभुतासम्पन्न अधिकारी के,

(ii) शासकीय निकायों और अधिकरणों के, तथा

(iii) भारत के किसी भाग के या कामनवैल्थ के, या किसी विदेश के विधायी, न्यायिक तथा कार्यपालक लोक आफिसरों के

कार्यों के रूप में या कार्यों के अभिलेख के रूप में हैं;

(2) किसी राज्य में रखे गए प्राइवेट दस्तावेजों के लोक अभिलेख ।

75. **प्राईवेट दस्तावेजें**—अन्य सभी दस्तावेजें प्राइवेट हैं।"

यह देखा जा सकता है कि धारा 74 में दी गई "लोक दस्तावेजों" की परिभाषा में पब्लिक सैक्टर उपक्रम और उनके अधिकारी नहीं आते हैं। उन्हें "शासकीय निकाय और अभिकरण" नहीं माना जा सकता। जहां तक धारा 74 में आने वाली अभिव्यक्ति "लोक अधिकारी" का संबंध है (और जो कि साक्ष्य अधिनियम में परिभाषित नहीं है), अधिक से अधिक सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 2(17) का लाभ लिया जा सकता है। उस खंड में "लोक अधिकारी" के रूप में माने जाने वाले व्यक्ति की संगणना में पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के कर्मचारी नहीं आते हैं।

इसके अतिरिक्त, यह निर्णय हो चुका है कि किसी उपक्रम, निकाय का अधिकारी लोक अधिकारी नहीं हो सकता[1]। भारतीय खाद्य निगम जो कि एक पब्लिक सैक्टर उपक्रम है, के अधिकारी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(17)(ज) और धारा 80 के अर्थ में "लोक अधिकारी" नहीं है।[2] इस मत की उच्चतम न्यायालय ने भी पुष्टि की है।[3] राज्य विद्युत बोर्ड की निधि और कार्यों पर राज्य सरकार द्वारा रखे जाने वाले नियंत्रण और अधीक्षण के होते हुए भी उसे "सरकार" नहीं कहा जा सकता और उसके अधिकारियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के प्रयोजन के लिए "लोक अधिकारी" नहीं माना जा सकता।[4] संभवतः, कुछ मिथ्या धारणा उत्पन्न हो गई है क्योंकि भारतीय दण्ड संहिता के प्रयोजनों के लिए, "लोक सेवक" अभिव्यक्ति को इस रूप में परिभाषित किया गया है कि उसके अंतर्गत निम्नलिखित विवरण के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति अभिप्रेत हैं, और धारा 21 के खंड "बारह" में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं :—

प्रत्येक व्यक्ति—

(क) जो सरकार की सेवा में है या जिसे सरकार के द्वारा संदाय किया जाता है या किसी लोक कर्तव्य के निर्वहन के लिए फीस या कमीशन सरकार द्वारा दिया जाता है;

(ख) किसी स्थानीय प्राधिकार की सेवा में है जो किसी लोक प्राधिकार, केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा उसके अधीन स्थापित किसी निगम अथवा कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित किसी सरकारी कंपनी की सेवा में है या जिसे उनके द्वारा संदाय किया जाता है।

इस बात का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि दंड संहिता में दी गई परिभाषा में भी "लोक सेवक" अभिव्यक्ति की परिभाषा दी गई है न कि "लोक अधिकारी" की। उसका मुख्य उद्देश्य है (i) रिश्वत के अपराध को उनकी बाबत प्रभावपूर्ण ढंग से करता है जो (सम्बद्ध अधिनियमिती के अधीन) 'लोक सेवक' के रूप में परिभाषित हैं; (ii) लोक सेवकों के विरुद्ध कतिपय

1. रेनुका बत्रा बनाम ग्रिंडलेज बैंक लि०, अमृतसर, ए आई आर 1980 पं० और हरि० 146।
2. कांता प्रसाद सिंह बनाम भारतीय खाद्य निगम, ए आई आर 1974 पटना 376।
3. कोयला खान भविष्य निधि आयुक्त बनाम रमेश चन्द्र झा, ए आई आर उ० न्या० 648।
4. वी पद्मनाभन नय्यर बनाम केरल राज्य विद्युत बोर्ड, ए आई आर 1989 केरल 86।

अपराधों के लिए प्रभावी उपबंध करना है, जिसके अंतर्गत लोक सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकारों की अवमानना भी है; (iii) ऐसे आचरण से निपटना है जो किसी लोक सेवक द्वारा या उसके विरुद्ध किए जाने पर उद्दीप्त हो जाता है और (iv) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की संबंधित धाराओं के लिए, विशेष रूप से धारा 197 के लिए, उपबंध करना है जिनके अधीन इस प्रकार लोक सेवकों के विरुद्ध किसी ऐसे अपराध के लिए अभियोजन नहीं लाया जा सकता जो वे अपने शासकीय कर्तव्यों के निर्वहन में करते हैं या किया जाना तात्पर्यित है, सिवाए तब जब समुचित सरकार की पूर्व मंजूरी प्राप्त कर ली जाए। दंड संहिता में लोक सेवक की जो परिभाषा दी गई है उसकी कोई सुसंगता साक्ष्य अधिनियम में आने वाली "लोक अधिकारी" अभिव्यक्ति के अर्थान्वयन के लिए नहीं है।

4.4. व्यादेश

लोक प्राधिकारियों के विरुद्ध न्यायालय द्वारा जारी किए गए अस्थायी व्यादेशों की बाबत क्योंकि एक बात प्रायः कही जाती है[1] अतः यह आवश्यक है कि विधि के सुसंगत उपबंधों का संक्षेप में विश्लेषण किया जाए। हम अभी अस्थायी व्यादेशों की चर्चा करेंगे जो कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38 द्वारा शासित हैं और सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन अस्थायी व्यादेशों के जारी किए जाने के प्रश्न पर अपने विचार केंद्रित करेंगे। संपत्ति से संबंधित व्यादेशों के लिए उपबंध संहिता के नियम 1, आदेश 39, में किया गया है। पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के संदर्भ में जिन उपबंधों का लाभ अधिकतर लिया जाता है वे आदेश 39, नियम 2(1), के अंतर्गत आते हैं, जो कि निम्नलिखित रूप में है—

"2(1) संविदा भंग करने से या किसी भी प्रकार की अन्य क्षति करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करने के किसी भी वाद में, चाहे वाद में प्रतिकर का दावा किया गया हो या न किया गया हो, वादी प्रतिवादी को परिवादित संविदा भंग या क्षति करने से या कोई भी संविदा भंग करने से या तद्रूप क्षति करने से, जो उसी संविदा से उद्भूत होती हो या उसी संपत्ति या अधिकार से संबंधित हो, अवरुद्ध करने के अस्थायी आदेश के लिए न्यायालय से आवेदन, वाद प्रारंभ होने के पश्चात् किसी भी समय और निर्णय के पहले या पश्चात्, कर सकेगा।"

4.5. व्यादेश मंजूर करने का आधार

इस बात पर ध्यान दिया जाए[2] कि अस्थायी व्यादेश केवल तब मंजूर किया जा सकता है जब वह प्रतिवादी को किसी संविदा का उल्लंघन करने अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39, नियम 2(1) के अधीन किसी प्रकार की क्षति पहुचाने से रोकने के लिए अपेक्षित हो। मोटे-तौर पर, "क्षति" का अर्थ है किसी विधि बाध्यता का उल्लंघन करना। किंतु केवल इस तथ्य के कारण कोई एक पक्षकार किसी क्षति की संभावना का अभिकथन करता है यह आवश्यक नहीं है कि वह अस्थायी व्यादेश का हकदार हो जाए। इस विषय पर सुव्यवस्थित प्रस्थापनाएं हैं।[3] यदि संक्षेप में उनका उल्लेख किया जाए तो न्यायालय निम्नलिखित मार्ग-निर्देशों को ध्यान में रखें[4] :—

(1) क्या अस्थायी व्यादेश की याचना करने वाले व्यक्ति ने एक प्रथमदृष्टया मामला प्रस्तुत किया है।

यह अनिवार्य है

(2) क्या सुविधा का पलड़ा उसके पक्ष में है, अर्थात् क्या व्यादेश नामंजूर किए जाने की दशा में उसे उस अन्य पक्षकार की अपेक्षा अधिक असुविधा हो सकती है जो असुविधा अन्य पक्षकार को होगी यदि व्यादेश मंजूर कर दिया जाए। इस विषय में मुख्य सिद्धांत यह है कि क्या व्यादेश की याचना करने वाले पक्षकार की, उसे नुकसानी का आदेश करके, पर्याप्त क्षतिपूर्ति की जा सकती है और क्या प्रतिवादी की ऐसा संदाय करने की आर्थिक स्थिति है।

(3) क्या अस्थायी व्यादेश की याचना करने वाले व्यक्ति को अपूर्तिनीय क्षति होगी यदि व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है। पहली शर्त के साथ, जो कि अनिवार्य है, कम से कम दो अन्य शर्तों का भी अर्जीदार द्वारा समाधान किया जाना चाहिए और तीन शर्तों में से किसी एक का सबूत देने मात्र से वह अस्थायी व्यादेश प्राप्त करने का हकदार नहीं हो जाता।

1. आगे परा 1.3, दूसरा और तीसरा उप-पैरा।
2. ऊपर पैरा 4.4।
3. दोराब कावासजी वार्डन बनाम कूमी स्क्रब वार्डन, ए आई आर 1990 उ० न्या० 867, पैरा 14-15।
4. मुल्ला, सिविल प्रक्रिया संहिता (संस्करण, 1990), पृष्ठ 1006।

4.6. पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध व्यादेश

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अस्थायी व्यादेश जारी करने के स्वविवेकाधिकार पर लगाए गए उक्त निर्बन्धनों[1] का लाभ पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को भी उतना ही उपलब्ध है जितना प्राइवेट सैक्टर के उपक्रमों को उपलब्ध है, उदाहरण के लिए, यह निर्णय लिया गया है कि किसी विश्वविद्यालय के अंतर्गत मामलों के प्रशासन या अनुशासन से संबंधित विषय में न्यायालय व्यादेश द्वारा तब के सिवाए हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि एक मजबूत प्रथमदृष्टया मामला प्रस्तुत नहीं किया जाए।[2] इसके विपरीत, वादी ने, जो कि लौह और इस्पात सामग्री की धरा-उठाई के कार्य में प्रतिवादी कंपनी के दुर्गापुर स्टाकयार्ड पर कार्यरत था और जिसने अस्थायी व्यादेश के लिए वाद दायर किया था, प्रतिवादी कंपनी को उसके चालू बिलों में से कटौतियां करने से रोकने के लिए अस्थायी व्यादेश की प्रार्थना भी की थी। वादी की प्रार्थना स्वीकार की गई थी और अस्थायी व्यादेश मंजूर किया गया था क्योंकि (i) उसने प्रथमदृष्टया मामला प्रस्तुत किया था; (ii) कटौतियां करने से उसे अपने कार्य के निर्वहन में अत्यधिक असुविधा हो सकती थी; और (iii) व्यादेश मंजूर न किए जाने के कारण वादी को अपूर्तिनीय क्षति हो सकती थी।[3]

एक और दिलचस्प मामला है, जिसका संबंध लोक प्राधिकारी से था, जिसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अंतवर्ती आदेश मंजूर करने के लिए अपेक्षित बातों की चर्चा की है; और उस निर्णय के संबंध में कुछ पंक्तियां लिखना लाभप्रद होगा।[4] हाउस आफ लार्डस के अमरीकन साइनामाइड कं०[5] के निर्णय का आश्रय लेते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ, उच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि व्यादेश अभिप्राप्त करने के लिए तीन अपेक्षाएं हैं–प्रथम दृष्टया मामला, सुविधा का पलड़ा और अपूर्तिनीय क्षति। उसने यह उल्लेख भी किया कि हाउस आफ लार्डस ने सुविधा के पलड़े पर बहुत बल दिया था। जहां तक अपील में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने का प्रश्न है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "व्यादेश मंजूर करने या मंजूर करने से इंकार करने के निर्णय के विरुद्ध अपीली न्यायालय तब हस्तक्षेप कर सकता है जब आदेश मनमानीपूर्वक दिया गया हो अथवा सुसंगत कारणों पर विचार किये बिना दिया गया हो। निम्न न्यायालय ने विधि के समस्त सिद्धांतों को नकारते हुए अत्यधिक मनमानीपूर्वक और अपेक्षाओं पर ध्यान दिए बिना प्रतिवादियों को असंदत्त किश्तों की वसूली को रोकने का व्यादेश मजूर किया था। निर्णय से यह बात सामने आती है कि विद्वान न्यायाधीश ने यह विचार किया कि अंतवर्ती व्यादेश सामान्य अनुक्रम में दिया जा सकता था। उस मंजर करना न्यायालय के ठोस स्वविवेकाधिकार पर आधारित है जिसका प्रयोग सुस्थापित साम्या सिद्धांतों और मामले के समस्त तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में किया जाना चाहिए। न्यायालय के स्वविवेकाधिकार में विधि का मिथ्या उपयोग अथवा सामया के सिद्धांतों को लागू करने में स्पष्ट त्रुटि सम्मिलित नहीं है। व्यादेश असाधारण प्रकृति का होता है अतः उसका प्रयोग बहुत कम और सोच-विचार कर किया जाना चाहिये।"

उक्त तथ्यों के आधार पर, प्रतिवादी विकास परिषद् को वादी से दावाकृत किन्तु असंदत्त किश्तों की वसूली करने से रोकने का विचारण न्यायालय का आदेश अपास्त कर दिया गया।

हाल ही के एक मामले[6] में उच्चतम न्यायालय ने अंतवर्ती आज्ञापक व्यादेशों की मंजूरी के प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अंतवर्ती आज्ञापक व्यादेश साधारणतया निम्नलिखित बातों के लिए मंजूर किए जाते हैं :–

(क) अंतिम अविवादित पूर्वस्थिति को, जो कि लंबित विवाद के ठीक पूर्व विद्यमान थी, अंतिम सुनवाई पर्यन्त (जब कि पूर्ण अनुतोष मंजूर किया जा सकेगा) परिरक्षित रखने के लिए या बहाल करने के लिए, अथवा

(ख) उन कार्यों को समाप्त कर देने के लिए मजबूर करने के लिए जो अवैध रूप से किए गये हों या उन बातों को बहाल करने के लिए जिन्हें परिवाद करने वाले पक्षकार ने गलत तौर पर छीन लिया हो।

किन्तु क्योंकि (i) किसी पक्षकार के हक में ऐसा कोई व्यादेश मंजूर करने से जो पक्षकार विचारण में अपने अधिकार को स्थापित करने में असफल रहता है या रोकेगा, उस पक्षकार को, जिसके विरुद्ध व्यादेश मंजूर किया जाता है, उतनी ही अधिक अन्य या अपूर्तिनीय नुकसानी हो सकती है अथवा (ii) आनुकलपिक रूप से किसी पक्षकार के हक म व्यादेश

1. ऊपर पैरा 4.5।
2. बी० एच० विश्वविद्यालय बनाम राज किशोर त्रिपाठी, ए आई आर 1977 उ० न्या० 615।
3. एस० कृष्णास्वामी बनाम साउथ इंडिया फिल्म चम्बर आफ कामर्स, ए आई आर 1969 मद्रास 42।
4. यू० पी० आवास एवं विकास परिषद् बनाम एन० बी० राजगोपालन आचार्य, ए आई आर 1989, इला० 123, 127, 128, 129, पैराग्राफ 11 से 15 तक (न्या० के० सी० अग्रवाल और बी० एल० यादव)।
5. अमरीकन साइनामाइड कं० बनाम एथिकोन लि० (1973) ए० आई० आर० 504 (एच० एल०)।
6. दोरब कावसजी वाडैन बनाम कूमी स्केल वाडन, ए आई आर 1990 उ० न्या० 867, पृष्ठ 873 पर, पैरा 14।

मंजूर न किये जाने से जो पक्षकार सफल रहता है या सफल होगा, उतनी ही अधिक अन्य या अपूर्तिनीय क्षति हो सकती है, न्यायालय ने कुछ मार्गनिर्देश नियत किये हैं। न्यायालय ने मार्ग निर्देशों को निम्नलिखित रूप में बताया है :–

(1) वादी के पास विचारण के लिये एक मजबूत मामला है, अर्थात्, वह प्रथमदृष्टया मामले की अपेक्षा अधिक उच्चतम स्तर का है जो कि सामान्यतया प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिये अपेक्षित है।

(2) व्यादेश किसी अपूर्तिनीय या गंभीर क्षति का निवारण करने के लिये आवश्यक है जिसकी क्षतिपूर्ति सामान्यतया धन से नहीं हो सकती।

(3) सुविधा का पलड़ा ऐसे अनुतोष की याचना करने वाले के पक्ष में है।

4.7. बैंक गारंटी

बैंक गारटी के विषय पर भी कुछ शब्द कहना आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों में इस विपरीत विश्वास के होते हुए भी, सही विधि यह है कि जहां बैंक गारंटी दी गई हो और कपट का कोई प्रथमदृष्टया मामला नहीं हो वहां बैंक गारंटी को प्रवर्तित करने से न्यायालय द्वारा रोक नहीं लगाई जानी चाहिये।[1] यदि बैंक ने अप्रतिसंहरणीय वायदा किया है या उस पर ऐसी कोई बाध्यता है, चाहे वह पुष्ट की गई बैंक गारटी के रूप में हो अथवा साख पत्रों के रूप में, गारटी का सामान्यतया आदर किया जाना चाहिये, न्यायालयों का तब तक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये जब तक कि कपट अथवा विशेष प्रथमदृष्टया मामला न बनता हो।[2] न्यायालयों को गारंटी के धारक को उसे प्रवृत्त करने से प्रतिबंधित नहीं करना चाहिये।[3]

4.8. अनुच्छेद 12 और व्यादेश

अंत में हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों पर अनुच्छेद 12 को लागू करना या लागू न करने की बाबत व्यादेशों के विषय पर सुसंगत नहीं है। सभी कुछ उन आधारों पर निर्भर है जिन पर अस्थायी व्यादेश के लिये प्रार्थना की गई है। यदि आधार ऐसा है जिसका न्यायौचित्य केवल मूल अधिकारों के कारण है तो पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को अनुच्छेद 12 से अपवर्जित करने से अन्तर पड़ सकता है। किन्तु यदि आधार ऐसा है जो सामान्य विधि के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को और प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध उपलब्ध है, उदाहरण के लिये, संपत्ति या कब्जे में सदोष हस्तक्षेप या संविदा का कोई उल्लंघन या अन्य क्षति, तो इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता है कि अनुच्छेद 12 आकर्षित होता है या नहीं। किसी अधिकार के उल्लंघन की दशा में, यदि वह मूल अधिकार नहीं है तब भी, किसी उपयुक्त मामले में व्यादेश के रूप में अनुतोष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अन्तर्गत उपलब्ध है[4] चाहे विरोधी पक्षकार पब्लिक सैक्टर उपक्रम है अथवा कोई प्राइवेट पक्षकार है।

---

1. यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बनाम बैंक आफ इंडिया, ए आई आर 1981 उ० न्या० 1426।
2. वाशिम गांगूली बनाम इंडियन आक्सीजन लि०, ए आई आर 1989, कलकत्ता 150, 153, 154।
3. यू० पी० को-आपरटिव फडरेशन लि०, बनाम सिंह कंसलटैंट्स, (1988) 1 उ० न्या० मामले 174।
4. ऊपर पैरा 4.5।

अध्याय 5

संशोधन के पक्ष और विपक्ष में तर्क तथा निष्कर्ष

5.1. भूमिका

इस अध्याय में, हम उन तर्कों की जांच करना चाहते हैं जो संविधान के अनुच्छेद 12 के संशोधन की आवश्यकता के समर्थन में दिये जा सकते हैं और उन तर्कों की भी जो ऐसे संशोधन के विपक्ष में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ऐसा करते समय हमारे लिये यह आवश्यक होगा कि ऐसे संशोधन की संवैधानिक वैधता की परीक्षा करें और ऐसा कोई संशोधन प्रस्तावित किया जाए। यद्यपि, इस पक्ष की परीक्षा हम आगे चलकर करना चाहते हैं और पहले संशोधन की आवश्यकता के गुणावगुण की परीक्षा करेंगे।

5.2. संशोधन के पक्ष में तर्क : कारोबार सिद्धांत

सामान्यतया अनुच्छेद 12 का संशोधन करने के विषय पर, ताकि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को इस अनुच्छेद की परिधि से अपवर्जित किया जा सके, मुख्य आधार का तर्क यह है कि यदि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को कारोबारी नीति से काम करना है और उन्हें अधिकतम स्वतंत्रता देनी है तो संविधान के अनुच्छेद 12 का ऐसा निर्वचन, जो इन उपक्रमों को इन अधिकारों के प्रयोजनों के लिये "राज्य" के सिद्धांत के अन्तर्गत लाता है, उन उपक्रमों को वाणिज्यिक और औद्योगिक रीति से काम करने में गंभीर कठिनाइयां पैदा करता है। इस संबंध में, लोक सभा कार्य प्रक्रिया और संचालन नियमों के नियम 312क की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है जो (जहां तक सारपूर्ण है) निम्नलिखित प्रकार से हैं :—

> "312क. चौथी अनुसूची में विनिर्दिष्ट पब्लिक उपक्रमों के कार्यकरण की परीक्षा करने के लिये एक पब्लिक उपक्रम समिति होगी। समिति के कृत्य निम्नलिखित होंगे : —
>
> * * * *
>
> (ग) लोक उपक्रमों की स्वयत्तता और दक्षता के संदर्भ में यह परीक्षा करना कि पब्लिक उपक्रमों के कार्यों का प्रबंध ठोस कारोबारी सिद्धांतों और समुचित वाणिज्यिक पद्धतियों के अनुसार किया जाता है या नहीं; और
>
> * * * * *

5.3. स्वायत्तता का तर्क

उपरोक्त तर्क के साथ ही एक अन्य तर्क जुड़ा हुआ है जिसे स्वायत्तता का तर्क कहा जा सकता है। इस संदर्भ में, औद्योगिक नीति संकल्प, 1956 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है जिसमें अन्य बातों के साथ निम्नलिखित भी है :—

> "उद्योग और व्यवसाय में राज्य की बढ़ती हुई भागीदारी के साथ-साथ उस पद्धति का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है जिसके अनुसार ये कार्य किये जाने चाहिये या उनका उपबंध किया जाना चाहिये। यदि इन उपक्रमों को सफल होना है तो तुरन्त निर्णय लेना और उत्तरदायित्व स्वीकार करने की इच्छाशक्ति आवश्यक है। इसके लिये, जहां भी संभव हो, अधिकार का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये और उनका प्रबंध कारोबारी तरीके से किया जाना चाहिये ————————। पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की सफलता का निर्णय उनके सकल परिणाम के अनुसार करना होगा और उन्हें उनके कार्यकरण में अधिकतम संभव स्वतंत्रता होनी चाहिये।"

5.4. प्रबंध पर प्रभाव

एक और तर्क जो प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है, संविधान के अनुच्छेद 12 के वर्तमान वृहत्त निर्वचन से प्रबंध पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित है। हम इस संदर्भ में एक लेख में से उद्धरण देना चाहते हैं जो कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुआ था।[1] यह उल्लेख करने के पश्चात् कि वर्तमान स्थिति उपक्रमों के कर्मचारियों या ठेकेदार के रूप में या

1. रामास्वामी आर० अय्यर, "राज्य के रूप में उद्यम तथा अनुच्छेद 12" (25 अगस्त, 1990), एकनामिक एंड पोलिटिकल वीकली, पृष्ठ एम 129 से एम 134 तक (पृष्ठ एम 132 पर)।

किसी और हैसियत से उपक्रमों के साथ वाणिज्यिक संव्यवहार करने वाले व्यक्तियों के कारण उत्पन्न हुई है, उक्त लेख में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये गये हैं :—

> "जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पब्लिक उपक्रमों का "राज्य" के रूप में वर्णन मुख्यतया मूल अधिकारों और रिटों से संबंधित उपबंधों के संबंध में है पब्लिक उपक्रमों के विरुद्ध उनका उपयोग कौन करता है ? यह कार्य जन साधारण नहीं करते, अपितु प्रमुख रूप से पब्लिक उपक्रमों के कर्मचारी और अन्य व्यक्ति जिनका पब्लिक उपक्रमों के साथ संविक्षाजन्य या कार्यपूर्ण संविक्षाजन्य संबंध है। प्राइवेट सैक्टर की कंपनी का कर्मचारी अपनी नियुक्ति की संविदा के आधार पर न्यायालय जा सकता है; इसी प्रकार, प्राइवेट सैक्टर फर्म या कोई ठेकेदार अपनी संविदा की शर्तों के आधार पर न्यायालय जा सकता है, और किसी बड़े ठेके के लिए निविदा करने के लिए "प्रीक्वालीफिकेशन" के लिए बोली लगाने वाला न्यायालय में जा सकता है यदि प्रीक्वालीफिकेशन के लिए बोली लगाने के आमंत्रण की सूचना में अधिकथित शर्तों का अनुपालन नहीं किया जाता है। इनमें से कोई भी मूल अधिकारों का या रिट उपबंधों का आश्रय नहीं ले सकता; किन्तु पब्लिक उपक्रम से संबद्ध कर्मचारी या निविदाकर्ता या प्रदायकर्ता रिट अर्जी फाइल कर सकता है। संक्षेप में, पब्लिक उपक्रमों के "राज्य" के रूप में होने का यही परिणाम है और पब्लिक उपक्रमों और प्राइवेट सैक्टर के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर डाल देता है।
>
> प्रबंध पद्धति में अच्छे कर्मचारियों का चयन और गुणावगुण के आधार पर उनकी उन्नति या अवनति अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों में से हैं। इसी प्रकार, कारोबार की सफलता के लिए अच्छे अभिकर्ताओं या आपूर्तिकर्ताओं या सलाहकारों या ठेकेदारों का चयन महत्वपूर्ण है। सरकार में, ये सभी राज्य के संरक्षण के पात्र बन जाते हैं, और परिणामस्वरूप औचित्य, भेद-भाव विहीनता, नैसर्गिक न्याय, आदि के प्रश्न उपयुक्तता और दक्षता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यह अनोखी बात है कि एक अनिवार्य रूप से प्रबंधकीय कार्य, सरकार में व्यावहारिक रूप से विधायी कार्य बन जाता है; सभी "भर्ती नियमों" को अधीनस्थ विधायन का कार्य माना जाता है। सरकारी कर्मचारी अनेक विषयों की बाबत न्यायालय में जा सकते हैं, जैसे, नियुक्तियों के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाया जाना, नियुक्ति या प्रोन्नति के लिए चयन, वरिष्ठता, वेतन का निर्धारण, अनुशासनात्मक विषय, आदि। सरकारी सेवकों को प्रदान की गई अत्यधिक सुरक्षा और उन्हें उपलब्ध व्यापक विधि मार्ग कुछ ऐसे बड़े कारण हैं जो सरकारी कार्यकरण की दक्षता को प्रभावित करते हैं। सरकारी कर्मचारियों की दशा में ऐसी सुरक्षा की जो भी अच्छाइयां या बुराइयां हों, इस निर्णय का कि पब्लिक उपक्रम "राज्य" हैं, एक परिणाम यह है कि इस समस्त भावना और रुख को वे भी अपना लेते हैं। सरकार की तरह उनके मामले में भी, नौकरी के लिए अर्हताएं निर्धारित करना और "भर्ती नियम" बनाना व्यावहारिक रूप से अधीनस्थ विधि का अंश बन जाता है। संविदाओं और खरीददारियों के संदर्भ में एकरूपता और भेदभाव विहीनता के प्रश्न बुरी तरह घिरे रहते हैं। पब्लिक उपक्रमों के प्रबंधवर्ग को इसके कारण प्रक्रियात्मक शुद्धता और न्यायालय के समक्ष प्रतिरक्षा की चिन्ता तुरन्त, दक्षतापूर्व और मितव्ययतापूर्ण निर्णय लेने की अपेक्षा अधिक बाध्य बना देती है। इससे पब्लिक उपक्रमों का प्रबंध कमजोर हो जाता है और वाणिज्यिक तथा उपक्रम सम व्यवहार अत्यधिक कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप, कारोबारी उद्यम के रूप में उनकी प्रकृति में बदलाव आ जाता है और प्रबंध पद्धति में रोड़े उत्पन्न हो जाते हैं।"

5.5. लाभग्राही

एक और ब्यौरे संबंधी तर्क, जो उपरोक्त तर्क के अन्तर्गत माना जा सकता है किंतु जिसकी चर्चा करना भी आवश्यक है, यह आलोचना है कि वर्तमान स्थिति से कोई बड़ा लोक प्रयोजन पूरा नहीं होता है क्योंकि जिन्हें इसका लाभ (रिट अर्जियों तक तुरंत पहुंच) प्राप्त होता है वे जनसाधारण नहीं है बल्कि कतिपय समूह, जैसे, कर्मचारी, निविदाकर्ता और ठेकेदार हैं।[1] यह भी कहा जाता है कि कर्मचारियों की सुरक्षा की दशा में भी, आमतौर पर उच्च श्रेणियों के कर्मकार और मध्य श्रेणी के प्रबंधक ही प्रायः इसका लाभ उठाते हैं। यह तर्क विस्तारपूर्वक निम्नलिखित प्रकार से रखा जाता है :

> "औद्योगिक कर्मकारों को वृहत विधियां लागू होती हैं, जो औद्योगिक विवादों, मजदूरी संदाय, कर्मकारों के मुआवजा, आदि से संबंधित हैं, जो पब्लिक और प्राइवेट उपक्रमों को समान रूप से लागू हैं, उन्हें औद्योगिक कार्रवाई की शक्ति भी है। अतः कर्मकार पब्लिक उपक्रमों के 'राज्य' की परिभाषा में आने का कोई विनिर्दिष्ट लाभ अनिवार्यतः नहीं लेते हैं। उच्च श्रेणी के कर्मकार और प्रबंधक यह लाभ लेते हैं; किंतु क्या यह कोई वांछनीय सुरक्षा है ? हमने पहले यह उल्लेख

1. रामास्वामी आर० अय्यर, "राज्य के रूप में उद्यम तथा अनुच्छेद 12" (25 अगस्त, 1990), एकनामिक एंड पोलिटिकल वीकली, पृष्ठ एम 129 से एम 134 तक (पृष्ठ 133 पर)।

किया था कि एक सहमति के निर्णय में एक न्यायाधीश ने सरकारी सेवकों के एक बड़े वर्ग की पुष्टि होने के बारे में संदेह व्यक्त किया था। क्या पब्लिक उपक्रमों के कर्मचारियों को उस प्रकार की सुरक्षा उपलब्ध कराना आवश्यक है जो सिविल सेवकों को उपलब्ध है (जिसकी वांछनीयता अपने आप में प्रश्नगत है)? क्या किसी ऐसे पब्लिक उपक्रम के, जो कारोबार के प्रयोजनों के लिए स्थापित किया गया एक वाणिज्यिक संगठन है, उच्च स्तर के प्रबंधवर्ग को, चाहे कार्मिक नियमों की बाबत या संविदा संबंधी नियमों की बाबत, उस प्रकार के निर्णय लेने या चयन करने से रोका जाना चाहिए जैसा कि प्राइवेट सैक्टर के मुख्य कार्यकारी अधिकारी सामान्य अनुक्रम में करते हैं?

5.6. तर्कों के बीच अन्तर्संबंध

ऊपर के पैराओं में, सुविधा की दृष्टि से, महत्व की विभिन्न बातों का उल्लेख विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है किंतु इसके कारण हमें इस तथ्य की बाबत भ्रम नहीं होना चाहिए कि वे सभी एक दूसरे से संबंधित हैं; और अनुच्छेद 12 में संशोधन लाने का यह मामला (जिस रूप में हमने उसके पक्ष में तर्क दिए हैं) निम्नलिखित प्रकार से एक वृहत प्रस्थापना के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है

(क) पब्लिक सैक्टर उपक्रमों का समुचित कार्यकरण इस पूर्व अनुमान पर आधारित है कि ऐसे कार्यकरण में संविधान के अनुच्छेद 12 के पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को लागू होने के कारण उत्पन्न होने वाली प्रकार की बाधाओं से ग्रस्त नहीं होना चाहिए ;

(ख) वर्तमान स्थिति के मुख्य लाभग्राही इन उपक्रमों से संबद्ध उच्चतर स्तर या मध्य स्तर के कर्मचारी, संभावित ठेकेदार और वास्तविक ठेकेदार हैं जिन्हें वह विशेष लाभ प्राप्त हैं जो उन्हें प्राप्त नहीं हैं जो प्राइवेट सैक्टर के उपक्रमों या प्राइवेट व्यक्तियों के अधीन नियोजित था उनके साथ कारोबार करने वालों को प्राप्त हैं।

5.7. संशोधन के विपक्ष में तर्क : कारोबारी सिद्धांत

यह तर्क कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को ठोस कारोबारी सिद्धांतों पर कार्य करना चाहिए, प्रथम दृष्टि में बहुत आकर्षक लग सकता है, और कोई इससे इन्कार नहीं कर सकता कि प्रत्येक उपक्रम को इस आदर्श पर चलना चाहिए और यथासंभव इसको क्रियान्वित करना चाहिए। किंतु, इस तर्क पर बल देते समय, इस तर्क से आखें बंद करने की आवश्यकता नहीं है कि इन उपक्रमों में किसी न किसी रूप में सार्वजनिकता का तत्व विद्यमान है जैसा कि उनके नाम से प्रकट है। इस तथ्य के कारण कि उनमें सार्वजनिकता का तत्व है, कतिपय परिणामों का अनुमान लगाया जा सकता है जिनमें से एक यह है कि उनके कार्यों का कतिपय सुनिश्चित आधारों पर न्यायिक पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। यह अवसर उन आधारों का विस्तृत उल्लेख करने का नहीं है जिन पर राज्य कार्य का न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है[1] किंतु यह बात सुविदित है कि विधि का उल्लंघन, विधि में अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण न करना, पर्याप्त तथ्यात्मक सामग्री का अभाव, किसी विनिश्चय तक पहुंचने में निर्विचार, असद्भावपूर्वक या असंगत आधारों पर कार्य करना और (हाल ही के एक निर्णय के अनुसार) अयुक्तियुक्तता, कुछ ऐसे आधार हैं जिन पर ऐसा न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है। ये आधार सिद्धांत में वहां लागू होते हैं जहां कोई कार्य राज्य द्वारा किया जाता है। निस्संदेह, यह प्रश्न पूछना उचित है कि, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की दशा में, न्यायालय उपरोक्त आधारों में सम्मिलित सुसंगत मापदंडों के अनुपालन पर बल क्यों देते हैं। इसका उत्तर तलाश करना होगा, और बिना किसी कठिनाई के इसी तथ्य से मिल सकता है कि ये उपक्रम "पब्लिक" (सार्वजिनक) हैं। संविधान के विद्वानों ने उन विभिन्न लक्षणों पर पर्याप्त विचार किया है जिनके कारण कोई उपक्रम "राज्य" का रूप ग्रहण करता है। किंतु, वर्तमान प्रयोजन के लिए, इतना कहना भी पर्याप्त है कि किसी न किसी रूप में ये राज्य और "पब्लिक" से संबंधित हैं।

> "संघ और प्रत्येक राज्य की कार्यपालक शक्ति का विस्तार कोई व्यवसाय या कारोबार करने के लिए करने के कारण अनुच्छेद 298 भारत के संघ को या उनराज्यों में से किसी को, जिनसे मिलकर संघ बनता है, यान खरीदने वाले या बेचने वाले या कोई व्यावसायिक या करोबारी कार्य करने वाले या किसी अन्य क्षेत्र के व्यापारी नहीं बना देता और संघ तथा राज्यों की कार्यपालक शक्ति का प्रयोग सदैव ही संवैधानिक परिसीमाओं और विशेष रूप से संविधान के भाग 3 में दिए गए मूल अधिकारों से संबंधित उपबंधों के निदशक तत्वों के अनुसार और उनको अग्रसर करने के लिए ही किया जा सकता है।"[1]

जहां तक पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के "सार्वजनिक स्वरूप" का प्रश्न है, उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि पब्लिक उपक्रमों में नियोजन लोक नियोजन और लोक सम्पत्ति है। न केवल उपक्रमों

1. सैंट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन लि० तथा अन्य बनाम ब्रोजो नाथ, ए० आई० आर 1986, उ० न्या० 1571, 1588-89।

न, अपितु समाज ने भी, उपक्रमों के समुचित और दक्षतापूर्ण कार्यकरण के लिए उन पर बाजी लगाई हुई है।[1] इस संबंध के कई पहलू हैं जिनमें से अनेक पर न्यायिक निर्णयों में पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को "राज्य" मानने के सिद्धांत पर चर्चा करते समय बल दिया गया है या प्रकाश डाला गया है। किंतु वह स्वर्णिम धागा जो उन सबको बांधे हुए है यह व्यापक प्रस्थापना की सृष्टि किसी कानून से हुई है कई बार उनके द्वारा किए जाने वाले कृत्यों की प्रकृति के कारण न्यायलय इस ओर बल देते है राज्य द्वारा की जा रही वित्तीय सहायता को भी अन्य बातों के अतिरिक्त सुसंगत माना जा सकता है। "राज्य के अभिकरण या परिकरण" होने का सिद्धांत, जिसे प्रायः इस संदर्भ में आधार बनाया जाता है, इस बात को ही कहने का एक दूसरा तरीका है कि ये उपक्रम राज्य का ही विस्तार या राज्य के व्यक्तित्व का स्वरूप हैं। नियंत्रण की मात्रा अथवा राज्य और उपक्रम के अर्न्तसंबंध की गहनता स्वभाविक रूप से हर उपक्रम की दशा में अलग-अलग होगी; किंतु महत्वपूर्ण बात तो राज्य और उपक्रम विशेष के बीच संबंध का (पारंपरिक दृष्टि से) होता है। कोई एक विशिष्ट कसौटी अपने आप में पर्याप्त या निश्चायक नहीं है; अनेक आधारों को ध्यान में रखना होगा। निकाले जाने वाला निष्कर्ष किन्हीं एक या दो मापदंडों को लागू करने का परिणाम नहीं हो सकता बल्कि उपक्रम की प्रकृति और स्वरूप के सकल रूप से आकलन का परिणाम होगा चाहिए। कोई उपक्रम-विशेष राज्य का "परिवर्तित स्वाभिमान" मात्र हो सकता है क्योंकि उस उपक्रम और राज्य के बीच जो बंधन हैं वह मजबूत और सम्पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर है---और इसी धारणा से न्यायिक निर्णयों में प्रायः "गहरा और व्यापक नियंत्रण" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया जाता है। ऐसे उपक्रमों को आसानी से 'राज्य' की परिभाषा में सम्मिलित माना जा सकता है दूसरे ध्रुव पर ऐसा कोई उपक्रम हो सकता है जिसका राज्य के साथ संबंध मामूली और दुर्बल हो; ऐसी दशा में, उसे "राज्य" कहना कठिन हो सकता है। और फिर वित्तीय पक्ष पर भी विचार करें। कोई उपक्रम तात्विक रूप से सरकार के साधनों पर आश्रित हो सकता है और न्यायालय के लिए उसे "राज्य" कहना आसान हो सकता है। दूसरी ओर, ऐसा उपक्रम हो सकता है जिसमें सरकार का वित्तीय अंशदान मामूली या नगण्य हो; ऐसी दशा में न्यायालय को उसे "राज्य" घोषित करते समय बहुत सतर्कता बरतना उचित होगा। किंतु ये सभी प्रत्यक्षतः मिलेजुले मापदंड उस मूल मापदंड के सामने नतमस्तक हो जाते हैं जो किसी उपक्रम के "सार्वजनिक" स्वरूप की विद्यमानता, प्रकृति और विस्तार का पता लगाने के लिए राज्य और उपक्रम के बीच की कड़ी का आकलन करता है।

5.8. "पब्लिक (सार्वजनिक)" स्वरूप की संगतता

पुनरावृत्ति की जोखिम उठाकर भी हम इस प्रस्थापना पर बल देना चाहते हैं कि उपक्रम का सार्वजनिक स्वरूप ही उसे "राज्य" का दर्जा प्रदान करने का आधारभूत कारण है, जहां तक कि संविधान के कतिपय उपबंधों का प्रयोजन है। यदि उपक्रम के कारबार सार्वजनिक स्वरूप के हैं तो उस कारबार में कतिपय मापदंडों को उपक्रम पर लागू करने और उस पर बाध्यकर बनाने का औचित्य है। ऐसे कारबार में औचित्य सुनिश्चित करने में समुदाय का उचित हित सन्निहित है। पुनः, अगर कारबार के पहलू को छोड़ भी दें, तब भी, यदि उपक्रम को धन मुख्यतया सरकार से प्राप्त होता है तो उस धन की सहायता से जो कारबार किया जाता है उसे करने की रीति में समुदाय की दिलचस्पी को स्वीकार करना होगा। इसी प्रकार, यदि उपक्रम द्वारा किए जा रहे कृत्यों की परिधि में लोग कल्याण की प्रकृति के कृत्य हैं (भले ही उसे इसके लिए प्रायः संविदाएं नहीं करनी पड़ें) तब भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उपक्रम को कुछ सिद्धांतों का अनुपालन करना होगा।

5.9. कारोबारी सिद्धांतों का विश्लेषण और रिट अधिकारिता की उपलब्धता

ऐसा प्रतीत होगा कि जो लोग अनुच्छेद 12 का संशोधन करने के पक्ष में तर्क देते हैं वे यह मानकर चलते हैं कि अच्छे कारोबारी सिद्धांतों या अच्छे प्रबंध तथा ऐसे उपक्रमों की बाबत मूल अधिकारों आदि से संबंधित संवैधानिक उपबंधों को लागू करने के बीच कोई विरोध है। किंतु हमें विश्वास है कि यह विरोध केवल लगता भर है पर वास्तविक नहीं है। यह भूल इस बात को मान लेने के कारण है कि उपक्रम की प्रत्येक कार्रवाई को न्यायालय रद्द कर सकता है। सच्चाई यह है कि कवल अवैध, मनमानी या अनुचित कार्रवाई का ही न्यायिक पुनरीक्षण हो सकता है। निःसंदेह न्यायिक पुनरीक्षण के लिए (रिट के रूप में या अन्यथा) कोई अर्जी किसी भी आदेश या कार्रवाई के विरुद्ध किसी भी नागरिक द्वारा लगाई जा सकती है क्योंकि नागरिक को न्यायालय में जाने से रोका नहीं जा सकता है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि नागरिक हर मामले में अवश्य सफल हो जाएगा। ऐसी मति वाला व्यक्ति तो प्राइवेट सैक्टर के उपक्रम के विरुद्ध भी कार्यवाही आरंभ कर सकता है किंतु यदि कोई वादहेतुक नहीं है तो उसकी सफलता अवश्यंभावी नहीं है। न्यायालयों के द्वार खुले हैं; किन्तु न्यायालय जाने के स्वतंत्रता और न्यायालय में प्रवेश करने के पश्चात् वहीं निश्चित रूप से सफलता एक दूसरे से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई नहीं हैं।

5.10. स्वायतत्ता का पहलू

हमने ऊपर जो कुछ कहा है उसमें से अधिकांश एक संतोषप्रद उत्तर के रूप में पर्याप्त होना चाहिए यदि स्वायतता के पहलू पर बल देने की आवश्यकता है। निस्संदेह, पब्लिक सैक्टर उपक्रम की ओर से कारोबार को शीघ्र निपटाने और उत्तरदायित्व

1. पी० बी० सावंत, न्या०, दिल्ली परिवहन निगम बनाम कर्मकार, 1990 (अनु०) (2) स्केल 1

स्वीकार करने की इच्छा होनी चाहिए। किंतु इस ओर संकेत किया जा सकता है कि यह बात तो, संकुचित अर्थ में, सरकार के अंगों को भी उतनी ही लागू होती है जितनी कि पब्लिक सैक्टर के उपक्रमों को लागू होती है। सरकारी अधिकारियों को भी उत्तरदायित्व की भावना से और उचित गति से कार्य करना होता है ; और फिर भी वे मूल अधिकारों के अधीन हैं।

5.11. प्रबंध का पहलू

अनुच्छेद 12 का संशोधन करने के पक्ष में तर्कों में से एक जिस पर बल दिया जाता है, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों में प्रबंध की क्वालिटी बनाए रखना है। इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि इन उपक्रमों को, संविदाओं और नियोजन संबंधों के विषय में, दक्षता और गति के साथ कार्य करने दिया जाना चाहिए और इन उद्देश्यों में अनुच्छेद 12 के निर्वचन के कारण प्रायः बाधा उत्पन्न हो जाती है, जो उन्हें न्यायिक पुनर्विलोकन की विषयवस्तु बना देता है और मुकदमेबाजी की संभावनाएं पैदा हो जाती हैं जिससे उनके सुचारू रूप से कारोबार करने में बाधा पड़ती है। इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि इस आक्षेप के अनेक उत्तर हैं। प्रथम तो यह कि हम इस बारे में निश्चित नहीं है कि इस तथ्य के कारण कि रिट अधिकारिता का आश्रय लिया जा सकता है क्या प्रत्येक मामले में सुचारू कार्यकरण में निश्चित रूप से बाधा उत्पन्न होती है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि ऐसी अधिकारिता का प्रयोग केन्द्र सरकार और राज्यों सरकारों तथा उनके अधिकारियों और प्राधिकारियों के कार्यों के विरुद्ध संविधान के आरंभ से ही किया जा रहा है। ऐसी कोई गंभीर शिकायत नहीं मिली है कि यह अधिकारिता वाणिज्यिक संव्यवहारों के विषय में सरकारी कारबार के निष्पादन में कमी आई है। रेल और डाक–तार सरकार द्वारा सीधे ही चलाए जा रहे वाणिज्यिक या अर्ध-वाणिज्यिक कार्यों के उल्लेखनीय उदाहरण हैं, और हमें इन संबंधित विभागों द्वारा इस बाबत कोई भी गंभीर शिकायत पता नहीं लगी है। दूसरे यह कि यदि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध रिट अर्जियों में व्यादेश मंजूर किए जाने के कारण (इस आधार पर कि किस मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है) यदा–कदा किसी संव्यवहार का पूरा किया जाना स्थगित कर दिया जाता है तो उसे उन उच्चतर मूल्यों से संतुलित करना होगा जिनकी रक्षा के लिए कतिपय संवैधानिक मापदंडों के अनुपालन पर जोर दिया जाता है। हम इस पक्ष पर आगे पुनः विचार करेंगे। तीसरी बात यह कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को स्वयं भी रिट अधिकारिता का आश्रय लेना पड़ सकता है, उदाहरण के लिए, किसी अन्य पब्लिक सैक्टर उपक्रम के विरुद्ध, और तब समानता के अधिकार और अन्य मूल अधिकारों के कुछ फायदों का पता लगेगा। अंतिम बात यह कि, जहां तक औचित्य की बात है, यह संभव है कि न्यायालय ऐसी अपेक्षा का उल्लेख केवल संवैधानिक अधिकारों के आधार पर ही नहीं करें (जैसा कि वे अब तक करते रहे हैं क्योंकि ऐसे उपबंध विद्यमान हैं) बल्कि कानूनी निर्वचन की पेजीदगियों के प्रकाश में भी करें। इस संबंध में, इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है कि इंग्लैंड जैसे देशों में, जहां, अब तक संविधान में कोई मूल अधिकार नहीं लिखे गए हैं, न्यायालय, प्रशासनिक विधि के रूप में, धीरे-धीरे यह राय बनती जा रही है कि कानूनी कार्य, विशेष रूप से वे कार्य जो नागरिकों के अधिकारों पर प्रभाव डालते हैं, एक औचित्यपूर्ण ढंग से संपन्न होने चाहिएं। यदि अनुच्छेद 12 का संशोधन कर भी दिया जाए तब भी न्यायलय पब्लिक उपक्रमों की बाबत, कानूनी निर्वचन द्वारा यही दृष्टिकोण अपना सकते हैं।

5.12. वर्तमान स्थिति के लाभग्राही

प्रस्थापित संशोधन के पक्ष में यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान स्थिति के मुख्य लाभग्राही पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से जुड़े ठेकेदार या संभावित ठेकेदार और उच्चतर स्तर के कर्मचारी हैं। कारण यह है कि उन्हें ऐसा लाभ नहीं मिलना चाहिए। हमें यह प्रतीत होता है कि इस तर्क को देते समय यह मुख्य कारण जिससे संविधान के सुसंगत अनुच्छेदों को पब्लिक सैक्टर उपक्रमों पर लागू माना जाता है ध्यान नहीं दिया गया है। अनुच्छेद 12 के अंतर्गत संवैधानिक अधिकार सभी नागरिकों के लिए हैं, किंतु समानता का अधिकार, अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत, सभी व्यक्तियों को उपलब्ध है। हो सकता है कि यदा-कदा ठेकेदारों या कर्मचारियों द्वारा निर्णयवार मुकदमें दायर कर दिए जाते हैं। किंतु न्यायालय इस विषय में पूर्णतया असक्षम नहीं है। वे क्षतिपूरक या उदाहरणात्मक खर्चे का आदेश दे सकते हैं। हम इस बात पर भी बल देना चाहते हैं कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध रिट की उपलब्धता के लाभग्राही केवल कर्मचारी और ठेकेदार ही नहीं हैं। ऐसे लाभग्राही ईमानदार, जनकल्याण की इच्छुक संस्थाएं और व्यक्ति भी हो सकते हैं। इस बात का सटीक उदाहरण एक हाल ही का निर्णय है[1] जिसमें न्यायालय ने अनुच्छेद 19(1)(क) के उपबंधों को लागू करने की बाबत गुजरात के एक निर्णय का समर्थन किया जिससे कि जीवन बीमा निगम की अपनी एक पत्रिका से यह अपेक्षा की जाए कि वह निगम के संबंध में एक सार्वजनिक हित के विषय में अर्जीदार के प्रत्युत्तर को प्रकाशित करे। वास्तव में, विधि आयोग की पूर्वतर रिपोर्ट में उद्धृत अथवा उस रिपोर्ट में उल्लिखित आंकड़ा सामग्री में सम्मिलित अनेक मामलों का संबंध जीवन बीमा निगम (या अन्य पब्लिक सैक्टर उपक्रमों) के विरुद्ध कर्मचारियों और ठेकेदारों से भिन्न, व्यक्तियों द्वारा फाइल किए गए मुकदमों से है।[2]

1. जीवन बीमा निगम **बनाम** मनुभाई डी० शाह, जैटी 1992 (4) उ० न्या० 18।
2. विधि आयोग की 126वीं रिपोर्ट, पैरा 4.7 से 4.11 तक। बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 पर 112वीं रिपोर्ट भी देखें।

5.13. मूल प्रश्न : समानता

पूर्ववर्ती पैराओं में से कुछ में जो कुछ कहा गया है उसका संबंध संबंधित व्यक्तियों द्वारा वर्तमान स्थिति के विरुद्ध की गई मुख्य शिकायतों से है। इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण बुनियादी प्रश्न संवैधानिक आपत्तियों का है। संविधान के भाग 3 के विनिर्दिष्ट उपबंधों को यदि छोड़ भी दिया जाए तब भी संविधान की उद्देशिका में अभिहित समानता के दर्शन पर ध्यान देना ही पड़ेगा। इस दर्शन की अनुरूपता के कारण, यह तर्क देना कठिन होगा कि लोक प्राधिकारियों और पब्लिक उपक्रमों को इस रीति से कार्य करने देना चाहिए जिसमें समानता का ध्यान न रखा जाए। यह प्रतीत होगा कि इस क्षेत्र में आने वाली अधिकांश निर्णयज विधि, जिसमें इस बात पर जोर है कि "राज्य कार्य" (स्टेट–एक्शन) में मनमानीपन का कोई स्थान नहीं है, समानता के उच्चतम आदर्श पर प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः आधारित है और उसकी यह अपेक्षा है कि राज्य कार्य मनमानीपन, या मनमानीपन के उचित संदेह, से दूर रहना चाहिए। समानता के सिद्धांत को त्यागने का अर्थ है संविधान की उद्देशिका में निहित प्रेरणादायक तत्वों पर आधारित आदर्शों को संविधान में से मिटा देना।

5.14. सांख्यिकीय चित्र

विधि आयोग ने (लोक उद्यम ब्यूरो के माध्यम से) कुछ सांख्यिकीय जानकारी उन मुकदमों के बारे में प्राप्त की है जो अनुच्छेद 12 के आधार पर पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध लाए गए हैं। आयोग सर्वप्रथम यह व्यक्त करना चाहता है कि सांख्यिकीय चित्र ऐसा नहीं है जिससे कोई खतरा महसूस हो या जो किसी बड़े संवैधानिक संशोधन को उचित ठहराए। दूसरा मंतव्य यह है कि कुछ उपक्रमों के मामले में[1] ऐसा कोई अवसर नहीं आया है जब निम्नतम निविदाकर्ता ने किसी उपक्रम की कार्रवाई को रिट अर्जी लाकर प्रश्नगत किया हो। तीसरी बात यह कि, कुछ नमूनों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि अनेक बार आपत्ति के ऐसे स्वीकार्य आधार हैं जिनके कारण ठेकेदार ने पब्लिक सैक्टर उपक्रम की, कार्रवाई या प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध आपत्ति उठाई है। इस रिपोर्ट में, उनके ब्यौरों की चर्चा करना सुविधाजनक नहीं होगा। किंतु, उदाहरण के लिए, हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि अक्सर (ठेकेदारों की दशा में) उपक्रम द्वारा कीमत में वृद्धि करने के बारे में वास्तविक विवाद उठा है। ऐसे भी मामले हैं जहां ठेका दिए जाने पर उसे स्वीकार करने से इस आधार पर इंकार कर दिया गया है कि ठेकेदार ने मजदूरों को देय राशि का भुगतान नहीं किया और इस बारे में विवाद को ठेकेदार ने रिट अर्जी विषय बनाया है। ऐसे विवादों को पूर्णतया निराधार नहीं कहा जा सकता है।

5.15. निम्नतम निविदा की बाबत स्थिति

विधि आयोग को जो पत्र मिले हैं उनसे यह प्रतीत होगा (जो पत्र पब्लिक सैक्टर उपक्रमों से लोक उद्यम ब्यूरो के माध्यम से प्राप्त हुए हैं) कि ऐसी धारणा बनी हुई है कि जिस व्यक्ति ने निम्नतम निविदा की है उसे ठेका दिया ही जाना चाहिए, चाहे निविदाकर्ता की पृष्ठभूमि या पूर्ववृत्त कैसा भी क्यों न हो। इसी धारणा के कारण यह सुझाव दिया गया है कि यदि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को अनुच्छेद 12 के प्रवृत्त होने से अपवर्जित कर दिया जाए तो इससे इन उपक्रमों के कार्यकरण में सहायता मिलेगी। "इससे उपक्रमों को ऐसे मामलों में निम्नतम निविदा को अस्वीकार करने की स्वतंत्रता मिल जाएगी जिनमें निविदाकर्ता का पूर्व कार्यवृत्त असंतोषजनक समझा जाता है या उनका पूर्ववृत्त विवादास्पद समझा जाता है।" यह भी कहा जाता है कि इसी प्रकार से ठेकेदार के साथ संव्यवहार को रोक देने या उसे निविदा करने से विवर्जित करने से पूर्व कारण-पृच्छा सूचना देने की अपेक्षा "सदैव दुर्भर होती है और यदि ऐसी अपेक्षा का पालन नहीं किया जाता तो उसे न्यायालय में प्रश्नगत किए जाने का मार्ग खुला रहता है और यदि अपेक्षा को समाप्त कर दिया जाए तो इससे उपक्रमों के हाथ मजबूत हो जाएंगे क्योंकि उनकी कार्रवाई का न्यायिक पुनर्विलोन नहीं होगा।"

हम ठेके देने के मामले में उपक्रमों के शीघ्र और दक्षतापूर्वक काम करने की इच्छा की प्रशंसा करते हैं पर साथ ही हम यह संकेत करना चाहेंगे कि ऐसा कोई कानून नहीं है कि निम्नतम निविदा की कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। विधि जिस बात पर बल देती है वह यह है कि इस प्रकार की कार्रवाई, यदि वह किसी निविदाकर्ता की बाबत की जाती है तो, किन्हीं कारणों पर आधारित होनी चाहिए और निविदाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् की जानी चाहिए। विधि तो इस बात की भी अपेक्षा नहीं करती है निम्नतम निविदा को अस्वीकार करन का जो कारण किसी विभाग या उपक्रम ने दिया है वह आवश्यक रूप से न्यायालय को स्वीकार्य हो। न्यायालय केवल इतना चाहते हैं कि फाइल पर राज्य–कार्य के न्यायोचित्य का उचित कारण होना चाहिए और सुनवाई का अवसर उचित हो। कोई लम्बी–चौड़ी जांच आवश्यक नहीं है और विश्वास किया जाता है कि न्यायालय मामले की

1. पत्र दिनांक 6 फरवरी, 1989।
2. पत्र दिनांक 13 फरवरी, 1989।

तात्विक वस्तु पर ध्यान देंगे न कि औपचारिकता पर । साथ ही हम यह भी बताना चाहते हैं कि निविदाओं को स्वीकार या अस्वीकार करने के विषय में मनमानेपन को दूर रखने के लोक प्राधिकारियों के कर्तव्य की बाबत विधि-विधि सम्मत शासन के बहुत व्यापक सिद्धांत का ही एक भाग है। हाल ही के एक मामले[1] में उच्चतम न्यायालय ने, एक सरकारी कंपनी द्वारा निविदाओं को स्वीकार करने के प्रश्न पर विचार करते समय, यह निर्णय दिया है कि अब यह तर्क देने का समय नहीं रहा कि सरकारी कंपनी जैसी किसी संस्था को वाणिज्यिक कार्य करने के मामले में न्यायिक पुनरीक्षण से मुक्ति मिलनी चाहिए । "राज्य के परिकरण की विधि सम्मत शासन की परिधि में कार्य करना चाहिए और उसे मनमानीपूर्वक काम करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए तथा, जनसाधारण के साथ संव्यवहार करते समय वह न्यायिक पुनरीक्षण के लिए उत्तरदायी है। इसी आधार पर न्यायालय ने अर्जीदार के वकील के इस वक्तव्य से सहमति व्यक्त की "कि एक प्रश्नगत प्रकार के उच्चतम प्रस्तावों को अस्वीकार किया जाए तब समुचित अधिकारी के निर्णय को प्रकट करने वाले पर्याप्त कारण उपलब्ध कराए जाने चाहिए और सामान्यतया वे संबंधित पक्षकार को संसूचित किए जाने चाहिएं सिवाय तब जब ऐसा न करने का कोई विशेष औचित्य हो ।"

5.16. जानकारी प्राप्त करने का अधिकार

वास्तव में, उच्चतम निविदा को अस्वीकार करने के लिए, कारणों को संसूचित करने के कर्तव्य के संदर्भ म[2], और पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के मामलों में जनसाधारण को अपने विचार व्यक्त करने के लिए अवसर प्रदान करने के कर्तव्यों के संदर्भ में[3] हम एक ऐसे निर्णय में से, जिसे प्रायः उद्धृत किया जाता है, विधि के सिद्धांतों को उद्धृत करना चाहते हैं[4]।

"उत्तरदायी सरकार की दशा मे, जैसा कि हमारी है, जहां पब्लिक सैक्टर के सभी अभिकरणों को अपने आचरण के लिए उत्तरदायी होना चाहिए, गोपनीयता के लिए कोई स्थान नहीं है । इस देश के जनसाधारण को लोक कार्य को जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है, अर्थात् ऐसी प्रत्येक बात जो कि सार्वजनिक रूप से उनके लोक कृत्यों द्वारा की जाती है । वे प्रत्येक लोक संव्यवहार के ब्यौरों को उनके समस्त परिणामों के साथ जानने के हकदार हैं। जानकारी प्राप्त करने का यह अधिकार, जिसका स्रोत भाषण की स्वतंत्रता के सिद्धांत में है, यद्यपि बिना शर्त नहीं है किंतु ऐसा एक कारण है जिससे प्रत्येक प्राधिकारी को, जब वह किन्हीं ऐसे संव्यवहारों के लिए गोपनीयता का दावा करे जिनका सार्वजनिक सुरक्षा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हो, ध्यान रखना होगा, गोपनीयता के परदे में सामान्य करोबार को छिपाना जनसाधारण के हित में नहीं है ।"

निःसंदेह यह मत सरकारी कार्यों के संदर्भ में व्यक्त किया गया था । किन्तु यह तर्क पब्लिक सक्टर पर भी तात्विक रूप से लागू होता है।

5.17. संशोधन की अनुपयुक्तता

वास्तव में कुछ ऐसे प्रश्न भी हैं जो निविदाओं और ठेकों के संकुचित क्षेत्र के परे हैं। राज्य कार्य न्यायिक पुनरीक्षण के अध्यधीन हैं क्योंकि वह ऐसी कार्यवाही है जिसमें जनसाधारण का हित है। न्यायिक पुनरीक्षण का आधार, जिसे मनमानापन कहा जाता है, इसलिए सामने आया है क्योंकि शायद पब्लिक पर ही कुल मिलाकर प्रभाव पड़ता है । वह व्यक्ति जिसके हित पर मनमानीपन कार्यवाही से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अपने हित की स्वयं चिन्ता कर सकता है, और नाटक में उसकी बहुत ही साधारण भूमिका चित्रित होती है । किंतु, वास्तव में, वह केवल ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा एक बहुत बड़ा संदेश मिलता है। दार्शनिक तौर पर (विधिक तौर पर नहीं) वह विधि सम्मत शासन के महान और महत्वपूर्ण सिद्धांत का एक साधारण प्रतिबिंब मात्र है। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के माध्यम से, जो कि अपने कार्य के लिए विधि का आश्रय लेता है, जो बात सामने आती है वह जनसाधारण की ही आवाज़ है । हम किसी भी दृष्टिकोण से पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को देखें, अंतिम रूप से यह उनका **सार्वजनिक स्वरूप** ही है जो कि उन्हें उसी प्रवर्ग में ले आता है जिसम सरकार स्वयं आती है ।

5.18. न्यायिक पुनरीक्षण का कृत्य

न्यायिक पुनरीक्षण के कृत्य को हाउस आफ लार्ड्स ने ऐसे शब्दों में व्यक्त किया था जो कि प्रशंसा योग्य और उद्धृत किए जाने योग्य हैं ।[5]

"...............यह कहना एक पर्याप्त उत्तर नहीं है कि कद्रीय सरकार कअधिकारियों या विभागों की कार्यवाही का न्यायिक पुनरीक्षण इसलिए अनावश्यक है क्योंकि वे उस रीति के लिए, जिससे वे अपने कृत्यों का निर्वहन करते

1. स्टार एन्टरप्राइजज बनाम सिटी एंड इंडस्ट्रीयट डिबलेपमट कारपोरेशन आफ महाराष्ट्र लि० 1990 (3), उ० न्या० मा० 280।
2. ऊपर पैरा 5.15।
3. जीवन बीमा निगम बनाम मनुभाई डी० शाह जैटी 1992 (4), उ० न्या० 181।
4. उत्तर प्रदश राज्य बनाम राज नारायण (1975) 4 उ० न्या० मा०, 428।
5. इनलैंड रवेन्यु कमिश्नर बनाम नेशनल फडरेशन आफ सल्फ-एम्पलाएड एंड स्माल बिजीनसस लि० (1981) 2 डब्ल्यू० एल० आर० 722 (एच एल) (लार्ड डिफलक) ।

हैं, संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं। **वे अपने कार्य के लिए संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं जहां तक कि दक्षता और नीति का प्रश्न है, और, उन बातों के लिए संसद ही न्यायाधीश हैं । वे जो कुछ करते हैं उनके विधिपूर्ण होने के संबंध में वे न्यायालय के प्रति उत्तरदायी हैं और इस संबंध में न्यायालय ही एक मात्र न्यायाधीश है ।"**

5.19. मानव अधिकारों का पहलू

हमें विश्वास है कि यह भी एक उपयुक्त और महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर **अजय हासिया के मामले में**[1] विचार किया गया था । सुसंगत मंतव्य निम्नलिखित रूप में है :—

"सरकार को लाल फीताशाही और धीमी गति के अपरिहार्य बंधनों से मुक्त रखने के लिए किसी निगम की भूमिका को स्वीकार किया जा सकता है किन्तु ऐसा करते समय सरकार को बुनियादी मानव अधिकारों से खेलने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अन्यथा सरकार के लिए लगभग प्रत्येक राज्य कारबार को, जैसे डाक-तार, दूरदर्शन और रेडियो, रेल, सड़क तथा टेलिफोन—संक्षेप में प्रत्येक आर्थिक कार्य को—संक्षेप में प्रत्येक आर्थिक कार्य को—अनेक निगमों को समनुदेशित करना सब से आसान कार्य होगा और इस प्रकार भारत के जनसाधारण को उन्हें गारंटी किए गए मूल अधिकारों को छीन कर धोखा दिया जा सकता है । यह संविधान का एक मखौल होगा तथा भारत के जनसाधारण के विश्वास के उल्लंघन से कम बात नहीं होगी क्योंकि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से निगम इन कृत्यों का निर्वहन करेंगे पर वास्तविकता यह होगी कि सरकार ही, जो कि निगम पर नियंत्रण रखेगी, इन कृत्यों का निगम के परिकरण या अभिकरण के माध्यम से निर्वहन करेगी । हम न्यायिक अर्थान्वियन की प्रक्रिया से मूल अधिकारों को व्यर्थ कर देने और अर्थहीन बना देने की बात को स्वीकार नहीं कर सकते और इस प्रकार संविधान के अध्याय 3 का लोप नहीं होने दे सकते । यह बात मेनका गांधी से पूर्व समय के संवैधानिक विश्वास के विपरीत होगी । (**मेनका गांधी** बनाम **भारत का संघ**) (1978) 1 उ० न्या० मा० 248 : (1978) 2 उ० न्या० रि० 621) ।"

यह बात एक अन्य मामले में[2] कुछ भिन्न शब्दों में व्यक्त की गई है :

"यह सरकार का एक अंग है, राज्य का अभिकरण है, कानून द्वारा सृष्ट प्राणी है जो कि अर्जन अधिनियम के पहियों पर चल रहा है। हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि अनुच्छेद 349 के प्रयोजनों के लिए अथवा अन्यथा यह सरकारी कंपनी राज्य है किन्तु हम अनुच्छेद 12 और भाग 3 पर अपना निर्णय सीमित रखते हैं ।"

हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि कुछ अन्य निर्णयों में भी[3] इस सार्वजनिकता के लक्षणों का आश्रय लिया गया है ।

एक और उतना ही समाधानप्रद कारण न्या० मैथ्यु ने **सुखदेव सिंह**[4] के मामले में अपने सहमति के निर्णय में दिया था जिसे प्रायः उद्धृत किया जाता है । उन्होंने अपना मत निम्नलिखित शब्दों में रखा था :

"राज्य एक निःशरीर व्यक्तित्व है । वह केवल नैसर्गिक अथवा न्यायिक व्यक्तियों के परिकरण या अभिकरण के माध्यम से कार्य कर सकता है । अतः, इस सिद्धांत में कोई अनोखी बात नहीं है । राज्य किसी निगम और अपने द्वारा बनाए गए किसी अभिकरण या परिकरण के माध्यम से कार्य करता है ।"

5.20. प्रस्तावित संशोधन की विधिमान्यता

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि, यदि प्रस्तावित संशोधन गुणावगुण के आधार पर ठोस है तब भी, क्या वह संवैधानिकता के परीक्षण पर खरा माना जा सकता है । इस प्रयोजन के लिए, इस विषय में जो हमने प्रस्ताव तैयार किया है उसे उद्धृत करना आवश्यक है । प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 12 के नीचे निम्नलिखित शब्दों में स्पष्टीकरण अंतःस्थापित किया जाएगा :—

"कोई कानूनी निगम, कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन गठित और रजिस्ट्रीकृत कोई कंपनी या सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई सोसाइटी इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए 'राज्य' नहीं समझी जाएगी ।"

1. अजय हासिया बनाम खालिद मुजीब, (1981) 1, उ० न्या० मा० 722, 733, पैरा 7।
2. सोमप्रकाश रेखी बनाम भारत संघ, (1981) 1, उ० न्या० मा० 449, 463, पैरा 29।
3. (क) जी० बी० महाजन बनाम जलगांव म्युनिसिपल काउंसिल, (1991) 3 उ० न्या० मा० 91 : ए० आई० आर० 1991 उ० न्या० 1153।
(ख) एन० पार्थासार्थी बनाम कंट्रोलर आफ कैपिटल इश्यूस, (1991) 3, उ० न्या० नि० 325।
4. सुखदेव सिंह बनाम भगत राम, ए० आई० आर० 1975, उ० न्या० 133।

अब हम प्रारूपण के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं। किन्तु हमें यह उल्लेख करना है कि कानूनी उपक्रमों, सरकारी कंपनियों और सरकार से सहायता प्राप्त रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियों को संविधान के भाग 3 के लाभ से अपवर्जित करने से एक महत्वपूर्ण संवैधानिक यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि क्या ऐसा संशोधन संविधान के बुनियादी ढांचे को नष्ट करता है उच्चतम न्यायालय के कम से कम दो ऐसे निर्णय हैं जो कि इस प्रश्न के उत्तर देने के लिए सुसंगत हैं। केश्वानंद भारती बनाम करेल राज्य, ए० आई० आर० 1973 उ० न्या० 1461 में अधिकथित बुनियादी ढांचे की कसौटी को लागू करते हुए उच्चतम न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स लि०, ए०आई०आर० 1980, उ० न्या० 1789 में (निर्णय के पैरा 31 में) यह मत व्यक्त किया है कि संविधान का अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) सरकार के गणतांत्रिक स्वरूप की नींव दूसरा निर्णय वामन राव के मामले में दिया गया था; ए०आई०आर० 1980, उ० न्या० 2/1; जिसमें बुनियादी ढांचे के सिद्धांत का पुन: समर्थन किया गया है। इस बात का उल्लेख भी कर दिया जाना चाहिए कि प्रस्तावित संशोधन न केवल अनुच्छेद 14 में बल्कि संभवत: सभी मूल अधिकारों पर, जहां तक पब्लिक सैक्टर उपक्रम का उनके लागू होने की बात है, प्रभाव डालेगा। स्पष्ट है कि ऐसे संशोधन को एक दूरगामी प्रकृति का माना जाएगा; और ऐसे संशोधन को प्रश्नगत किए जाने से बचना बहुत कठिन होगा क्योंकि ऐसा संशोधन राज्य के नियंत्रण के अधीन व्यावहारिक रूप से किए जाने वाले कार्यों में से अधिकांश को मूल अधिकारों की परिधि से अलग कर देगा।

5.21. सिविल न्यायालय की भूमिका

यह उल्लेख भी कर देना चाहिए कि, प्रस्तावित संशोधन में जैसी परिकल्पना की गई है, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के विरुद्ध रिट अधिकारिता लागू नहीं रहेगी, फिर भी न्यायिक हस्तक्षेप के लिए कुछ स्थान बचा रहेगा यदि ठेकेदार या कर्मचारी द्वारा उठाया गया प्रश्न ऐसा है कि उसके विषय में सामान्य न्यायालय में मुकदमा लाया जा सकता है। निस्संदेह रिट मामले में न्यायिक उपचार के आधार और साधारण सिविल वाद में उपचार के आधार अनिवार्य रूप से समान नहीं हो सकते। किन्तु हम इस पहलू का उल्लेख इस बात पर बल देने के लिए कर रहे हैं कि साधारण सिविल न्यायालयों द्वारा रोक आदेश या व्यादेश जारी करने की संभावना फिर भी बनी रहेगी। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39, नियम 1 के अधीन अस्थायी व्यादेश मंजूर किया जा सकता है यदि आवेदक को किसी क्षति की आशंका है। इस संदर्भ में, "क्षति" का सामान्य अर्थ विधिक अधिकार का उल्लंघन समझा जाता है। यदि ठेकेदार का तर्क यह है कि उपक्रम द्वारा की गई कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही किसी संविदा का उल्लंघन है तो स्पष्ट रूप से व्यादेश जारी किए जाने की संभावना हो सकती है परन्तु तब जब वह मामला व्यादेश के लिए अन्यथा ठीक हो। हम इस पहलू का उल्लेख इस लिए कर रहे हैं क्योंकि फाइल पर जो सामग्री है, उससे हमें यह प्रतीत होता है कि रिट अर्जियों के ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां विवाद किसी पब्लिक सैक्टर उपक्रम द्वारा किसी सुविधा संबंधी शर्तों के अधिकथित उल्लंघन बारे में है। कभी-कभी, विवाद कीमत बढ़ाने की बाबत होता है। [1]यदा-कदा, ठेकेदार, ठेके के अनुसार विनिर्दिष्ट माल के परिदान के लिए अर्जी देता है जहां माल पब्लिक सैक्टर उपक्रम के नियंत्रण में है। [2]अनेक बार, विवाद किसी रेट रनिंग संविदा के निर्वचन के बारे में होता है। [3]कुछ अन्य मामलों में, बैंक गारंटी का नकद भुगतान प्रश्नगत था। [4]हमें अनेक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि ऐसे मामले मुकदमों की विषय-वस्तु बने रहेंगे भले ही पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को अनुच्छेद 12 की परिधि से बाहर कर दिया जाए। उनका प्रथमदृष्ट्या न्यायोचित अनेक तर्कों पर आधारित है जिनका स्रोत सामान्य विधि से निकले विधिक सिद्धांतों में है सुसंगत सिद्धांत केवल संविधान से ही नहीं आए हैं।

यह उल्लेख करना भी उचित है कि अनेक न्यायिक निर्णयों में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 226 में न केवल शब्द "प्राधिकारी" की परिधि अनुच्छेद 12 में उल्लिखित अभिकरणों से बहुत अधिक है। [5]अत: अनुच्छेद 12 की परिधि से पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को हटाने से रिट अधिकारिता पूरे तरीके से समाप्त नहीं हो जाएगी।

समाप्त करने से पूर्व हम विधि आयोग की 126वीं रिपोर्ट का उल्लेख करना सुसंगत समझते हैं जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि सरकार और पब्लिक सैक्टर उपक्रमों की अपनी मुकदमा नीति और उपचार होने चाहिएं और वे इस दृष्टि से तैयार किए जाने चाहिएं जिससे कि मुकदमों से बचने और किसी अनुकल्पित पद्धति से विवादों का निपटारा करने की बात को प्रोत्साहित किया जा सके। मुकदमेबाजी समय और धन का एक अनुत्पादक विनिधान है। पब्लिक सक्टर उपक्रम और सरकार को अपने साधनों का संरक्षण करना होगा और एक न्यायिक रुख अपना कर व्यय की पूर्विकताएं निर्धारित करनी होंगी जिससे कि अनुपादक

1. पत्र दिनांक 13 फरवरी, 1989 तथा पत्र दिनांक 7 फरवरी, 1989।
2. पत्र दिनांक 6 फरवरी, 1989।
3. पत्र दिनांक 9 मार्च, 1989 और उसके संलग्नक।
4. पत्र दिनांक 13 फरवरी, 1989।
5. श्री अनन्दी मुक्ता सद्गुरु एस० एम० वी० एस० जे० एम० एस० ट्रस्ट बनाम वी० आर० रुदानी, ए०आई० आर० 1989, उ० न्या० 1607, 96 सी डब्ल्यू एन 798 तथा (1992) 2 एम एल जे 55 का अनुसरण किया गया।

मुकदमेबाजी उनके अपर्याप्त साधनों को न खा जाए और वित्तीय सहायता के अभाव में सामाजिक रूप से फायदाप्रद स्कीम ठप्प न हो जाएं। ये मत उस समय व्यक्त किए गए थे जब विधि आयोग ने यह मंतव्य प्रकट किया था कि पब्लिक सैक्टर उपक्रमों ने संविधान की परिधि से मुक्त रखने का आंदोलन प्रारंभ कर दिया था। विधि आयोग ने यह मत भी व्यक्त किया कि :

> "वास्तव में पब्लिक सैक्टर उपक्रमों में हाल ही में संविधान की परिधि से मुक्त रहने का आंदोलन प्रारंभ कर दिया है। कुछ भी कहिए, पब्लिक सैक्टर उपक्रमों को स्थापित करने के पीछे जो उद्देश्य, प्रयोजन और अंतर्निहित दर्शन है उसकी दृष्टि से उसे अपने कर्मचारियों अपने उत्पादों के उपभोक्ताओं तथा अन्य पब्लिक सैक्टर उपक्रमों के प्रति अपने रुख को ढालना चाहिए। किसी भी प्रकार से ऐसा उपक्रम ऐसी मुकदमेबाजी की विषमता को विकसित करने का व्यय वहन नहीं कर सकता जैसी कि प्राइवेट सैक्टर के नियोजकों ने उपदर्शित की है। और फिर भी, ऐसे अनेक मुकदमों को उद्धृत किया जा सकता है जिनमें पब्लिक सैक्टर उपक्रमों ने पूर्ण रूप से तुच्छ विवादों को उच्चतम न्यायालय तक पहुंचा दिया है और नितांत अस्वीकार्य, तुच्छ और प्राथमिक आक्षेपों को उठाकर विवादों को विलंबित कराया है (1983) 4उ० न्या० मा० 214; एस० के० वर्मा बनाम महेश चन्द्र तथा अन्य; गोवा सैपलिंग एम्पलाईज एसोसिएशन बनाम जनरल सुपिन्टेंडेन्स कं० आफ इंडिया (1985) 2 उ० न्या० मा० 353; डी० पी० महेश्वरी बनाम दिल्ली प्रशासन (1983) 4 उ० न्या० मा० 293; हिन्दुस्तान लीवर लि० द्वारा नियोजित कर्मकार बनाम हिन्दुस्तान लीवर लि० (1984) 4 उ० न्या० मा० 392)।"

5.22. निष्कर्ष

अब संक्षेप में संविधान के अनुच्छेद 12 के प्रस्तावित संशोधन के बारे में अपने निष्कर्ष देना सुविधाजनक होगा :—

(i) ऐसा संशोधन उन कठिनाइयों को, जिनका अनुभव पब्लिक सैक्टर उपक्रमों ने ठेके देने, निविदाओं को स्वीकार करने, सेवा संबंधी विषयों तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों में किया और जो ऐसे उपक्रमों पर अनुच्छेद 12 के वर्तमान में लागू होने से उत्पन्न होती हैं, निपटने के लिए न तो उचित है और न कोई आवश्यक उपाय है।

(ii) संविधान की उद्देशिका और संपूर्ण दर्शन को ध्यान में रखते हुए, यदि ऐसा संशोधन किया भी जाता है तो पब्लिक सैक्टर उपक्रमों द्वारा अनुभव की गई समस्याओं में से कुछ फिर भी सामान्य विधि के अधीन बनी ही रहेंगी।

(iii) विशेष रूप से, सामान्य विधि के अधीन जारी किए जाने वाले व्यादेशों के रूप में न्यायिक हस्तक्षेप को प्रस्तावित संशोधन के पश्चात् भी दूर नहीं किया जा सकता।

(iv) इस बारे में बहुत संदेह है कि, संविधान के बुनियादी ढांचे में संशोधन न किए जाने के सिद्धांत प्रकाश में, जिसे इस समय मान्यता प्राप्त है, क्या ऐसा संशोधन संवैधानिक स्तर पर विधिपूर्ण होगा।

हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

ह०
(के० एन० सिंह)
अध्यक्ष

ह०
(मो० सरदार अली खां)
सदस्य

ह०
(डी० एन० संदनशिव)
सदस्य

ह०
(पी० एम० बक्शी)
सदस्य (अंशकालिक)

ह०
(एम० मार्कस)
सदस्य (अंशकालिक)

ह०
(जी० वी० जी० कृष्णामूर्ति)
सदस्य-सचिव

तारीख, नई दिल्ली, 13 नवम्बर, 1992।

93-एम/एस 352 एम आफ एल जे एण्ड सी ए—200—17-5-94—जी०आई०पी०एस०

PLD-92 CVL (H)
200-1994 (DSK-IV)

मूल्य : देश में—139.50 पैसे; विदेश में—पौंड 5 शिलिंग 7 पैंस 6 या 8 डालर 37 सैंट्स

1994

प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय शिमला द्वारा मुद्रित तथा
प्रकाशन नियन्त्रक सिविल लाईन्स दिल्ली द्वारा प्रकाशित